उपसंहार

भारतीय ज्योतिषशास्त्र का विस्तारपूर्वक विवेचन यहाँ तक किया गया। ज्योति सिद्धान्तकाल के पूर्व वैदिककाल तथा वेदाङ्गकाल मे ज्योतिष शास्त्र की क्या अवस्था थी इसका विचार प्रस्तुत ग्रन्थ के प्रथम भाग मे किया गया है, और सिद्धान्त-काल मे उसकी प्रगति कहाँ तक हुई थी इसका विवरण दूसरे भाग मे दिया गया है। दूसरे भाग मे गणित,[1] सहिता तथा जातक, इन तीनो स्कन्धो का अलग-अलग विवेचन किया गया है। अब प्रस्तुत अध्याय मे इन सब बातो का साकल्येन उपसहार किया जाता है।

अधिकाश यूरोपियन विद्वानो का मत है कि भारतीयो ने ज्योतिष शास्त्र, विशेष करके उसका गणित और जातक भाग, खाल्डी या बैबिलोनी लोगो से अथवा मिस्र या अलक्जैण्ड्रिया के ग्रीक लोगो से सीखा। प्रसङ्गवश इस बात का बिचार ऊपर हो ही चुका है, परन्तु यहाँ और भी विस्तारपूर्वक विवेचन करते हुए उपसहार मे कुछ नयी बातें भी बतायी जायँगी।

नक्षत्रपद्धति बैबिलोन की नहीं

नक्षत्र-पद्धति मूलत किसने निकाली यह विचार उतने महत्व का नही है। ग्रहो की मध्यम और स्पष्टगति का गणित विशेष महत्व का है। यह बात पिछले प्रकरणो मे बतायी जा चुकी है। तथापि नक्षत्रो के विषय मे एक महत्वपूर्ण लेख अभी देखने को मिला, जिसका साराश नीचे लिखा जाता है। इस महत्व के लेख को डॉ० थीबो ने सन् १८९४ मे एशियाटिक सोसायटी जर्नल के ६३वे भाग में प्रकाशित किया है। बैबिलोनिया के बहुत से उत्कीर्ण लेख हाल ही मे खोद कर निकाले गये है। फादर स्ट्रासमेयर ने फादर एपिग की सहायता से बहुत परिश्रम से उनमे ज्योतिष सम्बन्धी जो

---

१. प्रस्तुत ग्रन्थ के अधिकांश भाग लिखे जाने के बाद जो और नयी बातें मालूम हुई है वे—J Burgess द्वारा लिखित Notes on the Hindu Astronomy 1895 के आधार पर पृ० ४०५–०६ पर दी जा चुकी हैं।

बाते उपलब्ध हुई उनको सन् १८८९ में (Astronomisches aus Babylon) नामक ग्रन्थ मे प्रकाशित कि ा है। प्राप्त उत्कीर्ण लेखों मे बहुत से वेध लिखे हुए है । उदाहरणार्थ, सेल्यूकिडन काल के १८९वे अर्थात् ई० स० पूर्व १२४।२३ वर्ष में एरु (अप्रैल-मई) मास की बीसवी रात्रि को शुक्र पूर्वाकाश मे दिखाई दिया था या दिखाई देने वाला था।[1] उसके ४ गज ऊपर मेष राशि के मस्तक प्रदेश का पश्चिम तारा दिखाई दिया। उसी वर्ष अबू (जुलाई-अगस्त) मास मे २६वी रात्रि को मगल आकाश के पूर्व भाग मे दिखाई दिया। उसके ऊपर मिथुन के मुख का पश्चिम तारा ८ इच दूरी पर था। फिर उसी वर्ष एरु मास के चौथे दिन सन्ध्या समय बुध का अस्त वृषभ राशि मे हुआ। सेल्यू० वर्ष २०१ मे तिश्रितु महीने की आठवी रात्रि मे तुला राशि मे मगल का उदय हुआ। इन सब बातो का विचार करके थीबो ने ऐसा निर्णय किया है कि बैबिलोन के ज्योतिषी ग्रह-स्थिति राशियो के अनुसार बनाते थे। क्रान्तिवृत्त के २७ या २८ नक्षत्ररूप विभाग उनको मालूम नही थे। इसलिए यह कहने का बिल्कुल ही अवसर नही रह जाता कि भारतीयो ने क्रान्तिवृत्त का नक्षत्ररूप विभाग बैबिलोनियन लोगो से लिया होगा। अतएव यह मत सर्वथा त्याज्य है।[2]

---

१. इस लेख मे यह निर्णय नहीं हुआ कि इन बातो को प्रत्यक्ष देखकर लिखा गया है या होने वाली बातें लिखी है। भविष्य मे होने वाली घटनाओं के ज्ञान के लिए ग्रहगणित का ज्ञान होना आवश्यक है। यह ज्ञान बैबिलोनियन लोगो में प्रचलित था या नहीं यह अब तक अनिर्णीत ही है।

२. इसी सम्बन्ध में लिखते हुए थीबो ने कहा है कि चीनी लोगों मे पहले २४नक्षत्र थे। आगे जाकर सन् ११०० के आसपास उनकी संख्या २८ हुई। इस कथन का कोई ऐतिहासिक आधार नहीं है। हिन्दू, चीनी और अरब नक्षत्र पद्धतियों मे बहुत कुछ साम्य है, यह उपर्युक्त लेख मे लिखते हुए थीबो ने कोई प्रमाण नहीं दिया है। परन्तु इस विषय में तारीख ५ सितम्बर १८९६ के एक निजी पत्र मे उन्होंने मुझे लिखा है कि चीनी, अरब हिन्दू नक्षत्र पद्धतियों में जो साम्य है उसकी समाधानकारक उपपत्ति अभी उनके विचार मे नहीं आयी है। यदि कोई दो मनुष्य, जिनका आपस मे कोई सम्बन्ध नहीं है, चन्द्र-मार्ग के नक्षत्रों को परिगणित करने लगे तो रोहणी, पुनर्वसु, मघा, चित्रा, ज्येष्ठा ये बड़े तारे सहज ही में दिखाई देगे। अश्विनी इत्यादि उनसे छोटे तारे भी उसी प्रकार दोनों को दृग्गोचर होंगे। यह बात थीबो को भी मान्य है और सभी के मानने के योग्य है। परन्तु मार्गशीर्ष, मूल, पूर्वोत्तर, भाद्रपदा, भरणी तीनो में समान है। पूर्वोत्तर फाल्गुनी हिन्दू और अरबों में समान है। आश्लेषा हिन्दू और

अब ग्रहगति और जातक के विषय मे यूरोपियन विद्वानो के मतो का परीक्षण करना है। हम लोगो मे से बहुतो को ऐसा विश्वास है कि यूरोपियनो का मत, चाहे उनकी योग्यता कुछ भी हो, वेद-वाक्यवत् मान्य है। आश्चर्य तो तब होता है जब हम देखते है कि हमारे कुछ विद्वान् भी इसी मत के है, परन्तु जब तक इस बात का निर्णय नही होता कि मत देने वालो का या स्वय विचार करने वाले का कितना अधिकार है, तब तक इस विषय मे कुछ नही कहा जा सकता। बड़े-बडे विद्वानो के कथन पर दूसरे लोगो का स्वभावत. ही विश्वास होता है, इसलिए विद्वानो को बहुत समझ-बूझ कर अपना मत देना चाहिए। ज्योतिष के गणित स्कन्ध के विषय मे अपना अभिप्राय देने के लिए यह आवश्यक है कि उन विद्वानो को हमारे ज्योतिष का करण-भाग (Practical Astronomy) तथा उपपत्तिभाग (Theoretical Astronomy) अच्छी तरह अवगत हो और साथ ही साथ उन्हे एतद्विषयक यूरोपियन ज्योतिष का पूर्ण ज्ञान हो। ऐसा ही व्यक्ति दोनो ओर के ग्रन्थो की तुलना करके यह कहने का अधिकारी होगा कि अमुक देश से अमुक देश ने यह बात सीखी है। वैसे ही जातक के सम्बन्ध मे मत प्रकट करने के पहले यह आवश्यक है कि उनको ऊपर लिखे हुए ज्ञान के साथ-साथ जातक-स्कन्ध के मूल तत्त्वो का सम्यक् ज्ञान हो। इसके अतिरिक्त अपना मन्तव्य व्यक्त करते समय उनके पास पूरे साधनो का होना आवश्यक है। भारतीय ज्योतिष के अध्ययन करने के साधन उत्तरोत्तर बढते जा रहे है। इन साधनो की अधिकता या न्यूनता के अनुसार मत देने वाले का अधिकार अधिक या न्यून होगा। आज जो साधन उपलब्ध हैं वे दस वर्ष पूर्व उपलब्ध नही थे। गणित-स्कन्ध के विषय मे कोलब्रुक, ह्विटने, ई० बर्जेस और थीबो ने अपने विचार व्यक्त किये है। मुझे स्वय ग्रीक ज्योतिष के विषय मे बिलकुल ही जानकारी नही है। इसका ज्ञान मुझे इन्ही लेखकों के लेखो से प्राप्त हुआ है। इसलिए इनके लेखो का साराश मै अक्षरश. नीचे दे रहा हूँ।

चीनियों में समान है। इससे थीबो का यह विचार है कि इन तीनों का मूल एक ही है। परन्तु १०।१२ वर्ष तक या एक ही वर्ष में चन्द्र का नक्षत्रो मे संक्रमण देखा जाय और भिन्न-भिन्न व्यक्तियों का नक्षत्रज्ञान एक ही प्रकार का हो जाय तो आश्चर्य नही होना चाहिए। किंबहुना, पक्षपात-विहीन सभी व्यक्तियों को इस बात पर विश्वास हो जायगा कि भारतीयों नें इस सताईस नक्षत्रों की कल्पना स्वयं ही की होगी। १०।१२ वर्ष तक नक्षत्र-चन्द्रसमागम देखकर मुझे तो पूर्ण विश्वास हो गया है कि भारतीयो ने स्वयं ही नक्षत्र विभाग की कल्पना की है। चीनियो के सब नक्षत्र भारतीयो से नही मिलते इसलिए यह सम्भव है कि चीनियों ने अपने नक्षत्र-पद्धति स्वतन्त्र रूप से स्थापित की हो।

टालमी से पूर्व के ज्योतिषियो का ज्ञान इन विद्वानो को भी नही है। यह बात स्वय थीबो ने स्वीकार की है। कोलब्रूक ने अपना मन्तव्य १८०७ से १८१७ तक प्रकाशित किया है। बर्जेस तथा ह्विटने ने अपने विचार १८६० मे व्यक्त किये है और थीबो का लेख १८८९ मे प्रकाशित हुआ है। प्रस्तुत ग्रन्थ मे जो बाते आयी है उनमे से बहुत-सी बाते कोलब्रूक को मालूम नही थी। बर्जेस और ह्विटने के समय मे भी उसमे की अधिकाश सामग्री उनको उपलब्ध नही थी। थीबो को उनमें से अधिकाश ग्रन्थ प्राप्त हुए थे पर कुछ नही मिले। परन्तु यदि साधनो के न्यूनाधिक्य का विचार छोड दिया जाय तो कहना पडेगा कि उपर्युक्त चारो विद्वान् अपना-अपना मत व्यक्त करने के पूर्ण अधिकारी थे, चाहे उनके मत हमारे प्रतिकूल ही क्यो न हो। बर्जेस और ह्विटने को जो सामग्री मिली थी वह एक होने पर भी उनकी राय अलग-अलग है। बेटली के ग्रन्थ मे ज्योतिष शास्त्र मूलत. किसका था इस विषय पर विशेष विचार नही किया गया है। डॉ० कर्न ने बृहत्सहिता के उपोद्घात मे (सन् १८६५ मे) तथा जेम्स बर्जेस (James Burgess) ने सन् १८९३ मे इस विषय पर अपने विचार प्रकट किये है। इन दोनो का मत है कि गणित और जातक ये दोनो हिन्दुओ ने ग्रीको से लिये है। परन्तु इस विषय पर विचारपूर्वक स्वतन्त्र लेख न लिखने के कारण इनका विवेचन पूर्ण और सप्रमाण नही माना जा सकता। इसलिए इनके मतो का परीक्षण यहाँ नही किया जायगा। प्रसगवश इसका कुछ विचार मै आगे करूँगा। इन विद्वानों को छोडकर और किसी यूरोपियन विद्वान् का अग्रेजी मे लिखा हुआ लेख मुझे देखने को नही मिला। किसी भारतीय विद्वान् का लेख भी इस विषय पर प्राप्त नही हुआ। आगे जो विचार किया जा रहा है उसमे भारतीयों के ज्योतिष के विषय मे कुछ नयी बातें मालूम होगी। कोलब्रूक[1] ने अपने विवेचन मे गणित और जातक इन दोनो विषयो का विचार किया है।

---

१. हेनरी टामस कोलब्रुक का जन्म सन् १७६५ में हुआ था। वह भारतवर्ष में सन् १७८२ में आया। सन् १८०१ में वह कलकत्ते में सदर दीवानी अदालत का जज नियुक्त हुआ। उसने संस्कृत की हस्तलिखित पुस्तकें क्रय करने में एक लाख रुपये खर्च किये थे। उसके लेख Asiatic Researches, Vol. 9 (1807) Vol. 12 (1816) मे और पाटीगणित तथा बीजगणित के अनुवाद सन् १८१७ में प्रकाशित हुए थे। उनका एक साथ संकलन करके वे सब सन् १८७२ में Miscellaneous Essays by Colebrooke Vol. 11 में छपा दिये गये है। ऊपर जो उदाहरण दिये गये है वे सब इसी ग्रन्थ से लिये गये है और जो पृष्ठसंख्या दी गयी है वह इसी पुस्तक की है।

उसी प्रकार अरब ज्योतिष के विषय मे उसने अपने विचार लिखे है। एक समय कई लोगो की ऐसी धारणा थी कि हिन्दुओ ने अरब लोगो से ज्योतिष सीखा। परन्तु अब इस विषय मे जो सामग्री उपलब्ध हुई है उससे स्पष्ट हो गया है कि अरब लोगो को ही हिन्दुओ से यह ज्ञान प्राप्त हुआ था और इस बात मे अब कोई सशय नही रह गया है। ताजिक मुसलमानो के साथ इस देश मे आया यह हम पहले ही बता चुके है।

कोलब्रुक का मत

कोलब्रुक ने (सन् १८०७ मे) लिखा है कि "मुझे ऐसा मालूम होता है कि हिन्दुओ मे प्रचलित क्रान्तिवृत्त की द्वादश विभाग वाली पद्धति अरबो ने कुछ हेर-फेर कर ग्रहण कर ली थी" (पृ० ३२३)। पृ० ३४४ मे वह लिखता है कि "हिन्दू लोग क्रान्तिवृत्त के बारह भाग करते हैं। उनका आरम्भ-स्थान ग्रीक लोगो के आरम्भ-स्थान से कुछ अश पश्चिम की ओर है। यह विभागपद्धति हिन्दुओ को ग्रीक पद्धति के अनुसार सूझी होगी यह बात बिलकुल असम्भव नही मालूम होती। यह बात यदि सच भी हो तब भी हिन्दुओ ने ग्रीक पद्धति को पूर्ण रूप से अविकल वैसे का वैसा ग्रहण कर लिया होगा, ऐसा नही कहा जा सकता। उन्होने अपने प्राचीन सत्ताईस नक्षत्र विभाग के अनुसार उसका मेल बैठा लिया है।" "गोल यन्त्र की कल्पना या तो हिन्दुओ ने ग्रीक लोगो से सीखी या ग्रीक लोगो ने हिन्दुओ से ली। यदि हिन्दुओ ने ग्रीक लोगो से ली भी हो तो भी उन्होने टालमी की नकल नही की है। दोनो की रचना में बडा अन्तर है।" "अलमजेस्ट का अरबी अनुवाद सन् ८२७ मे अलहसन बिन यूसुफ ने पहले पहल किया। दूसरे अनुवाद इसके पश्चात् किये गये है।" मिस्री तथा बैबिलोनियन लोगो के समान हिन्दू ज्योतिषी भी राशि के तीन विभाग करते है। इसी को द्रेष्काण कहते है, द्रेष्काण पद्धति खाल्डियन, मिस्री और पर्शियन लोगो की एक समान है। हिन्दुओ की ठीक वैसी नही है, कुछ भिन्न है।" "हिन्दुओं ने द्रेष्काण पद्धति विदेशियो से ली है, यह बात नि सशय मालूम होती है।" "यह कल्पना मिस्र के राजा नेकेपसो की है ऐसा परमिक्रुस कहता है। सेलस (Psellus) ने तेउसर नामक बैबिलोनी ग्रन्थकार का एतद्विषयक वचन उद्धृत किया है। उस ग्रन्थकार का उल्लेख पोरफिरियस ने भी किया है। द्रेष्काण शब्द मूलत. सस्कृत का नही मालूम पडता। इससे यह शका होती है कि हिन्दुओ का फल-ज्योतिष विदेशियो से लिया गया होगा। कुण्डली देखकर फल बताने की पद्धति हिन्दुओ मे बहुत प्राचीन काल से प्रचलित है। परन्तु यह भी सम्भव है कि उसे इन लोगो ने मिस्र, खाल्डिया अथवा कदाचित् ग्रीक लोगों से लिया हो।[1] यदि यह बात सच हो

---

१. फलज्योतिष हिन्दुओं ने ग्रीक लोगों से लिया है, यह कोलब्रुक ने सन् १८१७ में एक बार फिर कहा है।

तो ज्योतिषगणित का दिग्दर्शन भी हिन्दुओ को उसी समय मिला होगा। हिन्दुओ का ज्योतिषगणित फल-ज्योतिष के लिए ही है। परन्तु फल-ज्योतिष का दिग्दर्शन हो जाने पर उसको पक्व दशा मे लाने का श्रेय हिन्दुओ को मिलना चाहिए। यवनाचार्य के उल्लेख मात्र से कोई निर्णय नही हो सकता। उसके ग्रन्थ से लिये हुए सब आधारो से ग्रीक ग्रन्थो की तुलना कर किस ग्रन्थ का उसने आधार लिया था यह ढूढ निकालना आवश्यक है। ग्रह समान परन्तु विलोम गति से नीचोच्च अधिवृत्त मे घूमते हैं। उस अधिवृत्त के मध्यस्थित वृत्ताकार कक्षा की परिधि पर वे मध्यम गति से घूमते है।[1] पाँच ग्रहो की अनियमित गति की उपपत्ति हिन्दू ज्योतिषी इस प्रकार करते है—

केन्द्रच्युत वृत्त की परिधि पर जिसका मध्य है ऐसे अधिवृत्त मे अनुलोम गति से ग्रह घूमते हैं। '(बुध-शुक्र की उस केन्द्रच्युत वृत्त मे प्रदक्षिणा सूर्य की प्रदक्षिणा के समान काल मे होती है, इसलिए अधिवृत्त की प्रदक्षिणा उसकी कक्षा की वास्तविक प्रदक्षिणा है। बहिर्वर्ती तीन ग्रहो की अधिवृत्त की प्रदक्षिणा सूर्य की प्रदक्षिणा के समान काल मे होती है। और केन्द्रच्युत वृत्त की प्रदक्षिणा वस्तुत ग्रहों की वास्तविक प्रदक्षिणा है।) हिन्दू ज्योतिष और टालमी की पद्धति मे इतना साम्य है कि अपोलोनियस द्वारा कल्पित और हिपार्कस द्वारा प्रयुक्त केन्द्रच्युत कक्षा का स्मरण पाठको को हुए बिना नही रह सकता। तथापि पञ्च ग्रहो की गति स्पष्ट करने के लिए टालमी ने केन्द्रच्युत कक्षा से द्विगुणित जिसकी कक्षा है ऐसे वृत्त की जो कल्पना की है तथा चन्द्र के च्युति-सस्कार को निकालने के लिए केन्द्रच्युत वृत्त के मध्य के वृत्त के अधिवृत्त की जो कल्पना उसने की है, ये दोनो बाते हिन्दू पद्धति मे नही पायी जाती। वैसे ही बुध-गति मे दृष्ट अन्तर निकालने के लिए केन्द्रच्युत के केन्द्रवृत्त की कल्पना (Circle of anamoly) हिन्दू ज्योतिष मे नही पायी जाती है, यह ध्यान मे आये बिना नही रहता। ग्रहो के अधिवृत्त (मन्दनीचोच्च वृत्त) और केन्द्रच्युत अधिवृत्त (शीघ्र नीचोच्च वृत्त) को भारतीय ज्योतिषियो ने चपटा माना है। आर्यभट (प्रथम) और सूर्यसिद्धान्तकार ने इन अधिवृत्तो को चपटा माना है। इसमे गुरु और शनि के वास्तव अधिवृत्त के लध्वक्ष शीघ्रोच्च रेखा मे अर्थात् मध्यमयुति रेखा मे माने है (?)। ब्रह्मगुप्त और भास्कर ने केवल मगल और शुक्र के अधिवृत्तो को चपटा माना है। केन्द्र-च्युति वृत्त और अधिवृत्त (नीचोच्च वृत्तो) इत्यादि के विषय में भारतीय तथा ग्रीक कल्पनाओ मे इतना साम्य है कि यह साम्य काकतालीय न्याय से हो गया है, यह कल्पना क्लिष्ट

---

१. Epicycles को कोई-कोई प्रतिवृत्त कहते है। परन्तु प्रतिवृत्त का कुछ भिन्न अर्थ है। इसलिए यहाँ अधिवृत्त शब्द का प्रयोग किया गया है।

मालूम पडती है। भारतीय ज्योतिष मे यवनाचार्य और रोमकसिद्धान्त का उल्लेख होने के कारण यदि कोई कल्पना करे कि भारतीयो ने ग्रीक लोगो से ज्योतिष का ज्ञान प्राप्त कर अपने मूल अपूर्ण ज्ञान को बढाया तो मेरे विचार की दिशा के यह विरुद्ध नही है।" दूसरे एक लेख मे कोलब्रुक कहता है कि "हिन्दुओ की प्रतिवृत्त और नीच्चोच्चवृत्त पद्धति से टालमी, और कदाचित् हिपार्कस की पद्धति मे यद्यपि सर्वथा ऐक्य नही है, तथापि साम्य अवश्य है, इसलिए इसमे सशय नही रहता कि हिन्दुओ ने ग्रीक लोगो से कुछ बाते अवश्य ली होगी।"

ह्विटने का मत

अब मै ह्विटने और बर्जेस के मन्तव्यो का साराश देता हूँ। प्रथम ह्विटने ने सूर्य-सिद्धान्त के अग्रेजी अनुवाद के स्पष्टाधिकार मे हिन्दू और ग्रीक ज्योतिष के ग्रहस्पष्ट-गति-स्थिति प्रमेय की जो तुलना की है वह देता हूँ। वह कहता है—"प्रथमत दोनों पद्धतियो को स्थूलत देखने से दोनो की मूल विचारधारा एक ही है, ऐसा स्पष्ट प्रतीत होता है। ग्रहस्पष्टगति की अनियतता के जो दो कारण है उन्हे दोनो ने ढूढ निकालने मे सफलता प्राप्त की है। उस अनियतता के स्वरूप और उसके गणित करने की रीति दोनो की एक है। ग्रहो की दीर्घवृत्त कक्षा के स्थान पर दोनो ने प्रतिवृत्तो की कल्पना की है। सूर्य की जितनी बडी कक्षा है और सूर्य की जो मध्यम गति है उतनी ही बुध-शुक्र की दोनो ने मानी है। आधुनिक पद्धति के अनुसार बुध-शुक्र की जो वास्तविक कक्षा है उनके शीघ्र दोनो ने माने है और दोनो ने उन शीघ्रकक्षाओ के मध्य मे स्पष्ट सूर्य को न मानकर मध्यम सूर्य को माना है। दोनो ने मध्यम सूर्य के लिए कक्षा-च्युति सस्कार की योजना की है। दोनो ने वहिर्वर्ती ग्रहो के मध्य मे सूर्य को न मानकर पृथ्वी मानी है। उन ग्रहों के लिए, पृथ्वी-कक्षा के समान, प्रतिवृत्त की कल्पना की है। यह प्रतिवृत्त दीर्घवृत्त न होकर वृत्ताकार ही है। दोनों ने यहाँ भी प्रतिवृत्त का मध्य स्पष्ट सूर्य से न निकालकर मध्यम सूर्य से निकाला है। . दोनो पद्धतियो मे भेद बहुत ही कम है। टालमी ने जो चन्द्र के च्युतिसंस्कार को ढूढ निकाला था उसका ज्ञान भारतीयो को नही था। इन ग्रहों के स्पष्टीकरण मे जो उसने दूसरे एक नये प्रकार की कल्पना की थी, वह भी हिन्दुओ को मालूम नही थी। टालमी पूरा मन्दफल-संस्कार एक बार देकर फिर शीघ्रफल संस्कार भी एक बार दे देता है। हिन्दू दोनो संस्कार दो-दो बार देते हैं। हिन्दुओं की मन्द-शीघ्र परिधियाँ ओज-युग्म पद में भिन्न-भिन्न है, वैसा ग्रीक लोगो में नही है।"

अपने अन्तिम मत मे वह कहता है—"सूर्यसिद्धान्त मे जिस बीज-संस्कार की

कल्पना की है, उसमे मुसलमानी ज्योतिष का कुछ न कुछ अश अवश्य होगा, क्योकि इस प्रकार के फेरफार करने के लिए हिन्दुओ के पास वेध करने के साधन थे या नही, और यदि थे तो भी उनसे इष्ट अनुमान निकालने का ज्ञान उन्हे था या नही, इस बात का निर्णय अब तक नही हो सका है।[1] ....हिन्दू पद्धति नैसर्गिक नही है पूर्णत. कृत्रिम है। स्वच्छन्द रीति से गृहीत बातों से, किंबहुना, सृष्टि मे जिनका बिल्कुल आधार नही है, ऐसी असम्बद्ध बातों (Abrsurdities) से वह भरी हुई है। ऐसी कल्पनाएँ चाहे जो कर सकता है। (१) युग पद्धति, (२) कलियुगारम्भ के समय सब ग्रह एकत्र थे या परस्पर निकट थे और उस समय से गणित का आरम्भ, (३) काल के व्यवधान से सब ग्रह एकत्र आयेंगे यह कल्पना कर युगभगण सख्या मानना, (४) जीटापीशियम को आरम्भ स्थान मानना, (५) मन्दोच्च और पातों की भगण-सख्या उपवृत्त (परिधि) ओज-युग्म पद मे भिन्न-भिन्न होना और (६) ग्रहकक्षा के मान इस बात के उदाहरण हैं। इससे यह स्पष्ट होता है कि हिन्दू ज्योति शास्त्र एक ही पुरुष से उत्पन्न न हुआ हो तो एक ही काल मे एक ही वर्ग के लोगो से इसकी उत्पत्ति हुई है। उस पुरुष को या उस वर्ग को अपने स्वभाव विशेष का प्रभाव सारे राष्ट्र पर लादने का सामर्थ्य था। इसी लिए सर्व सिद्धान्तो मे समान यह पद्धति कहाँ, कब और किसके प्रभाव से उत्पन्न हुई इसके निर्णय करने का कोई महत्व नही रह जाता।[2] हमारा मत है, ईसवी सन् के आरम्भ होने के बाद थोडे ही दिनो मे हिन्दू ज्योति शास्त्र ग्रीकशास्त्र से उत्पन्न हुआ और ईसवी सन् की पाँचवी अथवा छठी शताब्दी मे यह पूर्णता को प्राप्त हुआ। इस बात की पुष्टि मे ये प्रमाण दिये जाते हैं— हिन्दुओ का स्वभाव और विचार करने का प्रकार जो हमको मालूम है उससे, जिसमें सत्य की मात्रा विशेष है ऐसे ज्योति शास्त्र की उत्पत्ति स्वतन्त्र रूप से उन लोगो मे हुई होगी यह अपेक्षा करना ही निर्मूल मालूम होता है। अवलोकन करना (Observation), वस्तुभूत बातो (Facts) का सग्रह करना, उनको लिख रखना और उन पर पूर्ण विचार करके उनमे से अनुमान निकालना, इन बातों की ओर उनका ध्यान ही नही होता और इन बातो की पात्रता ही उनमे नही है, यह बात सर्वत्र प्रसिद्ध है।

---

१. ह्विटने के कहने का यह आशय मालूम होता है कि हिन्दुओं के पास वेध लेने के साधन नहीं थे। लेकिन इस विषय में पुष्ट प्रमाण न होने पर भी जब वह यह कहता है कि हिन्दुओं ने बीज-संस्कार मुसलमानों से लिया है, तब उसकी विचार-सरणी का भाव स्पष्ट हो जाता है।

२. सूर्यसिद्धान्त के कालनिर्णय के विषय में यह कहा गया है।

. . . . . मानस शास्त्र, व्याकरण और कदाचित् अङ्कगणित और बीजगणित मे अवश्य उनको सफलता प्राप्त हुई है। . . प्राचीन सस्कृत ग्रन्थो मे तारो का उल्लेख बहुत कम आता है। ग्रहो क उल्लेख अर्वाचीन है, इसलिए यह स्पष्ट होता है कि खगोल-स्थित पिण्डो का अवलोकन करने की ओर उनकी प्रवृत्ति थी ही नही। क्रान्ति-वृत्त के नियमित विभाग दूसरो से प्राप्त होने पर चन्द्र-सूर्य की गति तथा सौर-चान्द्र मासो का सामञ्जस्य स्थापन करने की ओर उनका ध्यान अवश्य गया था। परन्तु उससे अर्वाचीन काल मे सूर्यमण्डल के समस्त ग्रहो के पूर्ण विवेचनात्मक ग्रन्थ जो सहसा उनमे दृष्टिगत होते है वे उन्हे कहाँ से प्राप्त हुए यह शका मन मे सहज ही उत्पन्न होती है। सूक्ष्म रीति से परीक्षण करने पर यह पद्धति मूल मे हिन्दुओ की थी यह बात मन मे आती ही नही। एक मात्र जिसमे सत्य सिद्धान्त है और दूसरे पक्ष मे जिसमे असम्भवनीय पौराणिक बाते भरी पडी है, ऐसी परस्पर विरुद्ध बातो का सग्रह एक साथ कैसे हुआ ? शास्त्रीय खोजो से सस्कृत मन मे सत्य के साथ असम्भव बातो का प्रवेश कैसे हो सकता है ? हिन्दू पद्धति यदि मूलत उनकी ही थी तो बहुत दिन तक लिए गये वेधो के आधार पर स्थापित हुई होगी और यदि यह बात ठीक है तो वेधो के आधारों को बिलकुल न दिखाते हुए यह कहना कि आगे उसमे सुधार हो ही नही सकता और उनका यह शास्त्र सनातन है और सत्य है; यह कहाँ तक युक्तिसगत है ? हिदू ग्रन्थो में वेध लेने का एक भी उल्लेख नही है। किसी स्थानविशेष के अक्षाश और देशान्तर लेने की छोटी-छोटी बाते छोडकर वेध लेने का प्रकार कही दिया हुआ नही है। ग्रन्थ ही ज्ञान के आधार है, वेधो की कोई आवश्यकता नही, इसी प्रकार की विचार-सरणी से ये ग्रन्थ लिखे हुए है। यह सम्भव है कि ग्रन्थो मे जो पद्धति मिलती है उस पद्धति का मूल जिस पीढी मे वह ग्रथित हुई थी उस पीढी से भिन्न किसी प्राचीन पीढी से आया हो अथवा वह किसी भिन्न राष्ट्र से आया हो, यही दो बाते सम्भव मालूम होती है। उन मूल शोधको का अवलोकन करने और वेध लेने का अभ्यास तथा इन पर आधारित अनुमान करने की बुद्धि और उनको अपने ग्रन्थो मे लिख रखने की प्रवृत्ति भारतीय ग्रन्थकारो मे थी ही नही। यदि रही भी हो तो वह विस्मृत हो गयी होगी। जिनके उद्योग के फल को उनसे अर्वाचीन वशजो ने अपनी पुस्तको मे ग्रथित किया वे लोग भारतवर्ष मे हुए होगे ऐसा उनके ग्रन्थो से मालूम तो नही पड़ता। इससे यही सम्भव प्रतीत होता है कि यह ज्ञान दूसरे देशो से ही यहाँ आया है।" ह्विटने के कथनानुसार भारतीय ग्रन्थो मे युगपद्धति इत्यादि असम्भव बाते भरी पडी है। परन्तु हम लोगो मे परम्परा से युगपद्धति इतनी बद्ध-मूल हो गयी थी कि उसको छोड देने से ब्रह्मगुप्त केकथनानुसार हम लोगो को रोमकसिद्धान्त के समान वेदबाह्य कहलाने का दोष

लगता। अतएव यह हमारे ज्योतिषी न कर सके। यूरोपियन दृष्टि से यह एक दोष हो सकता है, परन्तु हमारी दृष्टि मे यह दोष नही है। उलटे हमारे ज्योतिषियो ने युगपद्धति से इसका मेल बैठा दिया इसी से उनका चातुर्य प्रकट होता है। पञ्चसिद्धान्तिका से आरम्भ करके राजमृगाङ्क ग्रन्थ तक मैने ज्योतिष का इतिहास दिया है। उस पर से तथा अयनचलन के विवेचन से यह स्पष्ट होता है कि वेधो से फेरफार करने की जो आवश्यकता प्रतीत हुई तदनुसार वे सब इन ग्रन्थो मे समय-समय पर किये गये थे। इतना ही नही आगे भी आवश्यकतानुसार उनके बाद के ग्रन्थो मे वे किये गये

आगे चलकर ह्विटने कहता है कि "अब हम इस बात का विचार करेगे कि हिन्दुओ ने अपना शास्त्र ग्रीक लोगो से सीखा या नही। प्रतिवृत्त पद्धति दोनो मे समान है। यद्यपि यह बात सच है कि प्रतिवृत्त कुछ अशो मे स्वाभाविक है, तथापि इस पद्धति मे बहुत-सा भाग इतना कृत्रिम और मन कल्पित है कि इन दोनो देशो ने स्वतन्त्र रूप से इसे ढूढ निकाला हो यह बात असम्भव-सी मालूम पडती है। ग्रीक लोगो ने इस पद्धति का आविष्कार किया और धीरे-धीरे उसमे सुधार किया और टालमी ने पूर्ण रूप से उसको ग्रथित किया, ऐसा मानने के प्रमाण मिलते है। मिस्री और खाल्डियन लोगो से क्या मिला वह ग्रीक स्पष्टत स्वीकार करते है। प्रतिवृत्त कल्पना का मूल और उसके आधार-भूत वेध, उनको सिद्धान्तरूप देने की सयोगीकरण और पृथक्करण पद्धति, यह सब ग्रीक ग्रन्थो मे मिलती है। हिन्दू पद्धति को देखा जाय तो उसके लिए वेध इत्यादि किसी वस्तु की आवश्यकता नही। वह साक्षात् ईश्वर से अपने पूर्ण रूप मे भारतीयो को मिली। दोनो मे गति इत्यादि की सख्या मे काफी मेल है, इस बात को मै विशेष महत्त्व नही देता, क्योकि एक ही तत्व के अन्वेषण मे यदि दोनो मे परस्पर या प्रकृति से मेल बैठ जाय तो यह असम्भव नहीं है।"

प्रतिवृत्त पद्धति दोनो की स्वतन्त्र नही है और दोनों मे सम्बन्ध होना सम्भव मालूम पडता है। परन्तु यद्यपि दोनो की सख्याएँ एक नही है और दोनो के प्रयत्न की दिशा भी अलग अलग है तथापि ह्विटने इस स्पष्ट बात को स्वीकार नही करता। परन्तु जब वह कहता है कि ये दोनो राष्ट्र अपनी-अपनी खोज मे अलग-अलग प्रवृत्त हुए तब यह प्रायः मान लेना ही है कि हिन्दुओ ने अपने अनुसन्धान स्वतन्त्र रूप से किये थे। यह शोध दो-चार दिन मे समाप्त कर तुरन्त ग्रन्थो मे लिख दी गयी, यह बात कोई नही कह सकता। हमारे प्राचीन वेध लिखकर क्यो नही रखे गये इसके कारण पहले बताये गये है। आगे वह लिखता है—"क्रान्तिवृत्त के अशादि विभाग दोनो मे एक ही हैं। परन्तु ग्रीक विभाग तारकापुञ्जों के अनुसार किये गये है और हिन्दुओं के विभाग में उन तारकाओ से कुछ सम्बन्ध नही है। आरम्भ-स्थान से तीस अशो तक को वे मेष कहते है। अत.

उन्होने उसको दूसरो से लिया और उसका उद्देश्य भूल गये अथवा उसकी ओर ध्यान नही दिया।" मेषादि नामो के मूल कारण की ओर ध्यान न देकर इन सज्ञाओ को उन्होंने विभागात्मक बना लिया, इसी बात को मै विशेष महत्व देता हूँ। केवल मेषादि सज्ञाओ का कोई महत्व नही है। इसलिये यदि उन्होने इसे दूसरे से लिया हो तो हिपार्कस से पूर्व खाल्डियन लोगो से लिया, यह मै आगे जाकर सिद्ध करूँगा। ह्विटने फिर आगे लिखता है—"लिप्ता शब्द ग्रीक है। इसी तरह वार की कल्पना हिन्दुओ ने की। वह जिस पद्धति से निकली है उसके मूल मे होरा शब्द है, जो ग्रीक भाषा का है। ग्रह स्पष्टीकरण मे मुख्य उपकरण केन्द्र शब्द है जो ग्रीक है। तीनो शब्द किसी कोने मे छिपे पडे नही है, वे हिन्दू ज्योति शास्त्ररूपी किले के मध्य भाग मे स्थित है। हिन्दू पद्धति वास्तव मे ग्रीक लोगो से ली गयी है, इस विषय मे इन प्रमाणो का तथा अन्य भी प्रमाणो का खण्डन नही हो सकता। इसके सिवा हिन्दू ग्रन्थो मे यवन, यवनाचार्य इत्यादि का बार-बार उल्लेख होने के कारण और कुछ सिद्धान्त रोमक यानी रोम-नगर मे ईश्वर से प्राप्त हुए इस आशय की जो दन्तकथाएँ मिलती है, उनसे उपर्युक्त बात की पुष्टि हो जाती है। इनसे सूक्ष्म प्रमाण मै नही देता।" वारो का विचार पहले आ चुका है। होरा तथा वार यद्यपि हमारे नही है तब भी उनका ग्रह-स्पष्टगति ज्ञान से कोई सम्बन्ध नही है। केन्द्र, लिप्ता आदि शब्दो का विचार आगे किया जायगा। ह्विटने फिर कहता है—"अब हम विचार करेगे कि ग्रीस से हिन्दुस्तान मे ग्रीक ज्योतिषशास्त्र कब और कैसे आया। इस विषय मे केवल अन्दाज किया जा सकता है। ईसवी सन् के आरम्भ मे रोम के व्यापारिक बन्दर अलेक्जेण्ड्रिया से हिन्दुस्तान के पश्चिमी किनारे का व्यापार चलता था। इस व्यापार के कारण ज्योति.शास्त्र हिन्दुस्तान मे आया और उज्जयिनी उसका केन्द्र बना। सीरिया, पर्शिया या बैक्ट्रिया के मार्ग से यदि वह आया होता तो उज्जयिनी उसका केन्द्र न बना होता और हिन्दू ग्रन्थो मे रोम का इतना महत्व न होता। टालमी ने ग्रीक ज्योतिष मे जो सुधार किये थे, वे हिन्दू ज्योतिष मे नही है। इस पर से और सिटाक्सिस मे दी हुई गत्यादि सख्या हिन्दू ग्रन्थो मे दी हुई सख्या से नही मिलती, इसलिए यह मानना पडता है कि टालमी से पूर्व ही ग्रीक ज्योतिष का ज्ञान हिन्दुओं को प्राप्त हुआ। जो हिन्दू भूमध्यसागर मे जाते थे, उनके द्वारा या ग्रीक विद्वान् जो भारत का पर्यटन करते थे उनके द्वारा अथवा ग्रीक ग्रन्थो के अनुवादो के द्वारा या दूसरी किसी रीति से यह ज्ञान हिन्दुस्तान को प्राप्त हुआ होगा। निश्चित रूप से अब यह निर्णय करना कठिन है। यह ज्ञान उन्हे ईसवी सन् के आरम्भ की किसी शताब्दी मे मिला होगा, परन्तु पाँचवी या छठी शताब्दी मे जब हिन्दुओ का आरम्भ-स्थान सम्पात पर था,

उसी समय के आसपास यह ज्ञान वर्तमान रूप को प्राप्त हुआ। ऐसा होने के लिए पर्याप्त समय लगा होगा। इस बीच जो महत्त्व के फेरफार हुए उनमे ज्यार्धों का उपयोग बहुत महत्व का है। इसके अतिरिक्त यह भी ध्यान मे रखने योग्य है कि रेखागणित के स्थान पर अकगणित का उपयोग होने लगा। हिन्दू पद्धति मे रेखागणित का उपयोग बहुत थोडा है। समकोण त्रिभुज के कर्ण का वर्ग दूसरी भुजाओ के वर्ग के योग के तुल्य है, सरूप समकोण त्रिभुजो की तुलना और त्रैराशिक यही तीन बातें सूर्यसिद्धान्त मे मिलती है। दूसरे सिद्धान्तो मे अकगणित और बीजगणित का अधिक ज्ञान मिलता है, परन्तु इस बात का विवेचन यहाँ नही किया जायगा।"

उपर्युक्त मन्तव्य मे ह्विटने ने हमारी जो थोडी स्तुति की है उसे हम अपना सौभाग्य समझते है। परन्तु ह्विटने की पक्षपात-बुद्धि का एक उदाहरण यहाँ दिये बिना मै नही रह सकता। टालमी के ग्रन्थ से हिन्दुओ ने कुछ नही लिया, यह बार-बार कहते हुए भी, टालमी अथवा हिपार्कस की ज्या की कल्पना से हिन्दुओ को ज्यार्धो की कल्पना सूझी होगी इस निराधार मत का उल्लेख करने से वह अपने को वचित न रख सका। ह्विटने की साधारण विचारधारा के दूसरे उदाहरण उच्चपात के विवेचन मे पहिले ही दिखा चुका हूँ।

बर्जेस का मत

अब रेवरेड बर्जेस का मत दिया जाता है। वह हिन्दुस्तान मे बहुत दिनो तक रहा। उसको हमारे आचार विचारो का अच्छा ज्ञान था। ह्विटने अमेरिका मे रहता था (देखो, सूर्यसिद्धान्त अनुवाद पृ० २८४), उसे इस विषय में पूर्ण अज्ञान था, इसलिए ह्विटने की अपेक्षा बर्जेस को इस विषय मे अपना मत देने का अधिक अधिकार था, यह मानना पडता है। वह कहता है—"हिन्दू ज्योतिष पर मैने एक विस्तृत लेख लिखा था लेकिन उसके लिए यहाँ स्थान नही है, परन्तु ह्विटने ने अपनी टिप्पणियो मे जो मत दिये है उनसे मेरे मत भिन्न है, इसलिये संक्षेप मे मै अपने विचार देता हूँ। ह्विटने का कहना है कि हिन्दुओं ने अपने ज्योतिष गणित और जातक मूल रूप में ग्रीकों से लिये और उनका कुछ अश अरबियन, खाल्डियन और चीनियों से लिया। मेरी समझ में वह हिन्दुओं के साथ न्याय नहीं कर रहा है और वह उचित मात्रा से अधिक ग्रीक लोगो को मान दे रहा है। यह सच है कि ग्रीक लोगो ने इस शास्त्र में आगे जाकर बहुत कुछ सुधार किये थे, तथापि इसके मूल तत्त्व और उसमें के बहुत से सुधार हिन्दुओं के थे और उन्ही से ग्रीको ने यह शास्त्र लिया, यह बात मुझे स्पष्ट रूप से प्रतीत होती है।" इस विषय पर उसने जो प्रमाण दिये है उनका विवेचन आगे किया जाता

है · (१)—क्रातिवृत्त के २७ या २८ विभाग थोडे भेद से हिन्दू, अरब और चीनियो मे मिलते है। (२) क्रान्तिवृत्त के १२ विभाग और उनके नाम दोनो मे समानार्थक है। यह सच है कि विभाग-कल्पना तथा उनके नाम मूलत एक ही थे। (३) ग्रहो की गति और स्पष्ट स्थिति निकालने की प्रतिवृत्त की प्रक्रिया दोनो की समान है। कम से कम उनमे इतना साम्य है कि इन दोनो राष्ट्रो ने इनको पृथक् पृथक् ढूढ निकाला होगा, यह सम्भव मालूम नही होता। (४) हिन्दू, अरब और ग्रीक जातकपद्धति मे साम्य है बल्कि कई भागो मे वे एक ही है, इसलिए उनका मूल एक ही होना चाहिए। (५) प्राचीन लोगो को ज्ञात पाँच ग्रह और उनके नाम और उन पर आधारित वार-पद्धति समान है। इन पाँचो बातो के विषय मे मेरा मत यह है कि—"पहिली बात तो यह है कि ऊपर की पॉचो बातो के मूल कल्पक या शोधक होने के हिन्दुओ के पक्ष मे जितने प्रमाण है उनमे और उससे अच्छे किसी दूसरे राष्ट्र के पक्ष मे नही है।

दूसरी बात यह है कि पॉचो मे प्राय सभी के सम्बन्ध मे मूल कल्पना हिन्दुओ की थी। इसके अनुकूल प्रमाण इतने पुष्ट है कि उनको मानना ही पडता है और विशेष महत्व के स्थानो पर तो वे इतने दृढ है कि उनको कोई काट नही सकता।"

अब मै सक्षेप मे उपर्युक्त बातो का विवेचन करता हूँ। (१) क्रातिवृत्त के सत्ताईस या अट्ठाईस विभाग अपने विस्तृत रूप से हिन्दू लोगो मे अति प्राचीन काल से आ रहे है। दूसरे राष्ट्रो मे इसका प्रमाण नही के बराबर है या अत्यल्प है। इससे यह स्पष्ट है कि यह पद्धति शुद्ध हिन्दुओ की है। बायो इत्यादि लोगो ने इसके विपक्ष मे जो मत दिये है उनसे मेरा मत नही बदलता। (२) ह्विटने के ध्यान मे यह बात नही आयी कि क्रांतिवृत्त के १२ विभाग, उनके उपयोग और उनके नाम दूसरे देशो मे जितने प्राचीन काल से है उतने ही प्राचीन काल मे वे भारतवर्ष मे विद्यमान थे, ऐसा सिद्ध किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त इस बात के भी प्रमाण है कि दूसरे देशो मे जितने प्राचीन काल मे द्वादश विभाग प्रचलित थे उनसे कई शताब्दी पहले वे हिन्दुस्तान मे प्रचलित थे, पर ये प्रमाण उतने पुष्ट नही है। इस विषय मे ऐडलर और लिप्सियस ने जो प्रमाण दिये है उनके विषय मे हबोल्ट का मत मै यहाँ देता हूँ। ऐडलर कहता है कि प्राच्य लोगो मे द्वादश विभाग के नाम थे परन्तु तारकापुञ्ज नही थे। लिप्सियस कहता है कि तारकापुञ्ज जिनके कारण द्वादश विभागो का नामकरण किया गया था ग्रीक लोगो ने खाल्डियन लोगो से लिये थे, परन्तु प्राच्य शब्द से यदि ऐडलर का अभि-प्राय खाल्डियन इत्यादि किसी दूसरे राष्ट्र से हो तो मालूम नही पर इस शब्द का सकेत यदि हिन्दुओ की ओर हो तो यह बात उनकी द्वादश विभाग पद्धति के कारण अधिक उपयुक्त मालूम होती है। हबोल्ट का कहना है कि ग्रीक लोगो ने बारह विभाग और उनके

नाम खाल्डियन लोगो से लिये, परन्तु मेरा विश्वास है इस पद्धति का मूल खाल्डियनो से और पूर्व की ओर के देशों मे ढूढना चाहिए। (३) प्रतिवृत्त के प्रमेय दोनो राष्ट्रो मे भिन्न रीति से परिणत होते गये अतएव किसी एक राष्ट्र से दूसरे को सूचना मात्र मिली होगी, इससे अधिक कुछ नही कहा जा सकता। यदि इस सूचना का विवेचन किया जाय तो ग्रीक लोगो से हिन्दुओ को यह प्राप्त हुई, यह कहने का जितना आधार मिलता है उतने ही आधार के बल पर यह भी कहा जा सकता है कि ग्रीक लोगो को ही हिन्दुओ से इसका ज्ञान प्राप्त हुआ होगा। परन्तु इस बात के अधिक प्रमाण है कि हिन्दुओ से ही ग्रीक लोगों को इस पद्धति का पूर्वरूप प्राप्त हुआ था। (४) जातको की कल्पना तथा उसके सुधार के विषय मे किसी राष्ट्र विशेष की प्रतिष्ठा नही है परन्तु इन दोनो देशो की पद्धति मे जो साम्य है उससे स्पष्ट होता है कि इनकी उत्पत्ति अलग-अलग होना सम्भव नही। परन्तु इसकी मूल कल्पना किस की थी यह वाद हिन्दू और खाल्डियन लोगो के बीच मे है, ऐसा मै समझता हूँ। यदि व्यापक दृष्टि से विचार किया जाय तो हिन्दुओं के पक्ष मे अधिक अनुकूल प्रमाण मिलते है। हिन्दू ग्रन्थो मे जो तीन-चार अरबी या ग्रीक सज्ञाएँ है वे अर्वाचीन है। कुछ ग्रीक शब्द हिन्दू ग्रन्थो मे मिलते है परन्तु ग्रीक और सस्कृत मे ऐसे बहुत से साधारण शब्द है और दोनो भाषाओ की सुप्-तिडन्त पद्धति समान है। इससे यह कोई निष्कर्ष नही निकलता कि ग्रीक भाषा सस्कृत की जननी है। अतएव यदि दोनो भाषाओ मे शब्दो की समानता है तो वह उपर्युक्त कारण से ही है। वे शब्द एक ही उद्गम स्थान से आये होगे या अति प्राचीन काल मे सस्कृत भाषा से ग्रीक भाषा मे लिये गये होगे। (५) हिरोडोटस कहता है कि ग्रीक देवताओ के नाम मिस्र देश से ग्रीस देश मे आये। यहाँ देवता शब्द से ग्रह समझना चाहिए। इस उक्ति से ग्रहों के विषय मे ग्रीक लोगो की जो धारणा थी वह स्पष्ट हो जाती है। ग्रहो के नामो से वारो के नाम प्रथम किसने रखे यह कहना अत्यन्त कठिन है। इस विषय मे प्रो० एच० एच० विल्सन कहते है कि यह पद्धति ग्रीक लोगो को मालूम नही थी और रोमन लोगो ने भी बहुत अर्वाचीन काल तक उसको स्वीकार नही किया था। लोग साधारणत: ऐसा कहते है कि यह पद्धति मिस्री और बैबिलोनियन लोगों की थी, परन्तु इस बात का कोई आधार नही। इसलिए इस बात की कल्पना करने का श्रेय जितना दूसरे लोगों को दिया जाता है उतना हिन्दुओ को भी मिलना चाहिए।

अरब लोग स्वय ऐसा नहीं कहते कि ज्योतिषशास्त्र के मूल कल्पक वे है। उनको ग्रीक ज्योतिष का ज्ञान होने के पहिले वे भारतीय ज्योतिष से विशेष रूप से प्रभावित हो चुके थे। इसके बाद उन्होंने टालमी के सिटाक्सिस का अनुवाद किया और अरबी -

से लैटिन में अनूदित होने के बाद उसका ज्ञान यूरोप को प्राप्त हुआ। लैटिन अनुवाद में राहु को "नोडस कैपिटिअस" (मस्तक सम्बन्धी पात) कहा है और केतू को "नोडस काडी" (पुच्छपात) कहा है। इस बात से यह स्पष्ट हो जाता है कि अरब लोगो पर हिन्दू ज्योतिषका कितना प्रभाव था। इसलिए यह नही कहा जा सकता कि क्रान्ति-वृत्त के २७ विभाग की कल्पना अरबो ने की होगी।

ग्रहो की स्पष्ट गति निकालने की प्रक्रिया हिन्दू और ग्रीक पद्धति मे समान है। इस विषय मे मेरा मत है कि दोनो राष्ट्रो को एक दूसरे से कुछ न कुछ दिग्दर्शन अवश्य हुआ है और वह भी अति प्राचीन काल मे, क्योकि हिन्दुओ ने ग्रीक लोगो से क्या लिया यह इस समय निश्चयपूर्वक कहना असम्भव है। दोनो की सख्याएँ बिलकुल नही मिलती। अयनचलन का वर्षमान, पृथ्वी की तुलना मे सूर्य और चन्द्र के आकारमान, सूर्य का परमफल इत्यादि महत्व के विषयो मे ग्रीक लोगो से हिन्दुओ के मान अधिक शुद्ध हैं और हिन्दुओ के भगणकाल भी बहुत शुद्ध हैं। हिन्दू और ग्रीक लोगो ने एक दूसरे से बहुत ही स्वल्प सामग्री ली है और कोलब्रुक के मत के विरुद्ध यह कहने के लिए बाध्य होना पडता है कि इस विषय की विचारधारा पश्चिम से पूर्व की ओर न बहकर पूर्व से पश्चिम की ओर बही होगी। दर्शन और धर्म के सम्बन्ध मे और विशेषत. जन्मान्तर के सम्बन्ध मे ग्रीक और हिन्दू शास्त्रो मे इतना साम्य है कि कोलब्रुक के कथनानुसार इन विषयो मे हिन्दू शिष्य न होकर शिक्षक थे। उसी प्रकार मै कहता हूँ कि ज्योतिषशास्त्र के विषय मे भी यह असभवनीय नही मालूम होता।

थीबो का मत

पचसिद्धान्तिका के उपोद्‌घात मे थीबो लिखता है—"पञ्चसिद्धान्तिका मे दिये हुए पाँच सिद्धान्तो से यह मालूम होता है कि हिन्दू ज्योतिष को अपने प्राचीन रूप से नया शास्त्रीय रूप कैसे प्राप्त हुआ। पैतामहसिद्धान्त मे हिन्दू ज्योतिष का प्राचीन रूप दृष्टिगत होता है। वशिष्ठसिद्धान्त मे ज्योतिष सिद्धान्त कुछ अधिक परिणत हुआ है तथापि शास्त्रीय सिद्धान्त की अपेक्षा वह कम योग्यता का है। बिलकुल देशी पद्धति के सिद्धान्त और ग्रीक पद्धति की नीव पर खडे किये हुए नये सिद्धान्तो के मध्यवर्ती काल मे वशिष्ठसिद्धान्त की रचना हुई होगी। शेष तीन सिद्धान्तो मे वे आपस में कितने भी भिन्न क्यो न हों, ग्रीक पद्धति का पूर्ण प्राबल्य होने पर ज्योतिष को जो स्वरूप प्राप्त हुआ, वह स्वरूप उनमें विद्यमान है। वह स्वरूप प्रसिद्ध है इस कारण मै उसका वर्णन नही करता। रोमन और पौलिश सिद्धान्तो मे अंशत साम्य है। कुछ बातों मे सूर्यसिद्धान्त से उनका साम्य है।

वह हिपार्कस तथा टालमी के मध्यवर्ती काल मे लिया गया होगा। दूसरी बात यह है कि हिपार्कस ने पाँचो ग्रहो की मध्यगति की गणना की थी, उसमे टालमी ने विशेष कोई सुधार नही किया। इसके अतिरिक्त हिपार्कस के ध्यान मे यह बात आ गई थी कि ग्रहगति की अनियमितता के दो भिन्न कारण मान लेने से उसकी उपपत्ति ठीक बैठ जाती है। परन्तु प्रत्येक ग्रह के मान निश्चित कर गणित करने की रीति उसने नही निकाली थी। पञ्च ग्रहो की गतिस्थिति की गणना करने का श्रेय टालमी स्वय लेता है।

इससे यह अनुमान होता है कि सूर्यसिद्धान्त के समान ग्रन्थ जिनमे मन्द फल और शीघ्र फलरूपी सस्कार दिये गये है वे टालमी से अर्वाचीन है और इन सस्कारो का गणित टालमी के ग्रन्थ से प्रत्यक्षत या परम्परया प्राप्त हुआ था। रोमक सिद्धान्त मे केवल चन्द्र-सूर्य का गणित है। उसमे ग्रहगणित था या नही यह पञ्चसिद्धान्तिका से नही मालूम पडता। तथापि वह टालमी मे प्राचीन है, यह सिद्ध करने के लिए कोई प्रबल प्रमाण नही है।

"वासिष्ठ और पौलिश सिद्धान्तो मे ग्रहगणित है, ऐसा पञ्चसिद्धान्तिका के अन्तिम अध्याय से दीखता है। उस अध्याय के पूर्वार्ध मे जो नियम दिये हुए है उनमे मन्द फल और शीघ्र फल इन दोनो का विचार है। परन्तु वह अध्याय अच्छी तरह समझ मे नही आता, इसलिए इन नियमो का ग्रीक ज्योतिषियो से कितना सम्बन्ध है इस बात का विचार नही किया जा सकता। उस अध्याय के उत्तरार्ध के नियमो मे केवल शीघ्र फल का ही उल्लेख है, मन्द फल का नही, इसलिए यह प्रतीत होता है कि उत्तरार्ध के ये नियम टालमी से पूर्व की अपरिपक्वावस्था के है। उनमे की मध्यम गति हिपार्कस और टालमी से सर्वथा भिन्न है, परन्तु यह कहने का कोई सबल कारण नही कि टालमी के पूर्व का ज्योतिषज्ञान अलेक्जेंड्रिया से भारत मे आया था। हिन्दू ज्योतिष मे कुछ बाते टालमी की अपेक्षा अपरिणत अवस्था मे अवश्य वर्तमान है परन्तु इसका कारण यह है कि हिन्दू ज्योतिषियो का ध्यान प्रत्यक्ष प्रचलित गणित की तरफ था, सूक्ष्मता की ओर नही। दूसरा महत्व का कारण यह है कि अलेक्जेंड्रिया के अच्छे शास्त्रीय ग्रन्थो का ज्ञान हिन्दुओ के ज्योतिष ग्रन्थों मे नही आया। बायो के कथनानुसार वह ज्ञान ग्रीक फल-ज्योतिषियो से और मेरे मत मे पञ्चाङ्ग तैयार करने वाले साधारण ज्योतिषियो से ही प्राप्त हुआ था। उनका ज्ञान अपूर्ण होना स्वाभाविक है, इसलिए प्रामाणिक सिद्धान्तो से यदि उनके मत भिन्न हो तो आश्चर्य न होना चाहिए। ये नियम उनकी पुस्तको मे दिये होगे। पौलिशसिद्धान्त में उपपत्ति नही दी हुई है, केवल गणितोपयोगी नियम दिये हुए है। उसी तरह के नियम उनकी पुस्तको मे रहे होंगे। ऐसा मान लेने से भारत मे अलेक्जेंड्रिया से ज्योतिष ज्ञान कैसे आया यह समझ मे आ

जाता है। ग्रीक ज्योतिष के अपूर्ण ज्ञान पर हिन्दू ज्योतिष की इमारत खडी की गयी है, इसलिए यद्यपि सूर्यसिद्धान्तादि ग्रन्थ मुख्तय ग्रीक ज्योतिष के अनुयायी हे तथापि उनमें कई बातो मे नयी कल्पनाएँ और खोज हे और यद्यपि मूल ग्रीक ग्रन्थो की तुलना मे ये कल्पनाएँ और खोज कम योग्यता की हे तथापि कही-कही उनमे नये प्रकार और युक्तियाँ दी हुई हैं जिससे उनकी योग्यता तथा चातुर्य का पता लगता है। उत्तम हिन्दू ग्रन्थो की पद्धति ग्रीक ग्रन्थों से वैसी की वैसी नही ली गयी है और न पूरी तरह से उन पर आधारित ही है। उसमे मिश्रण है और वह सुधारी हुई है और इस दृष्टि से मूल कल्पक होने का श्रेय सूर्यसिद्धान्तकार को मिलना चाहिए।"

मत की समीक्षा

अब इस मत की समीक्षा की जाती है। इससे यह निर्णय हो जायगा कि परदेशीय ज्योतिष से हमारे ज्योतिष का क्या सम्बन्ध है तथा उपसहार मे यह भी बतलाया जायगा कि हमारे ज्योतिष की वृद्धि कैसे होती गयी है। उसमें की महत्त्व की या वादग्रस्त बातो के विषय मे मेरे सिद्धान्त क्या है, इस बात का भी प्रसगानुरूप निरुपण किया जायगा। गणितस्कन्ध का विचार करने से यह स्पष्ट मालूम पडता है कि ग्रहो की मध्यम गति-स्थिति, स्पष्ट गति, स्पष्ट स्थिति निकालने की रीति, मन्द शीघ्र फलसस्कारो के मान, अर्थात् वेधो से प्राप्त होनेवाले सब मान मूलतः हमारे ही हे। ग्रीक ज्योतिष से कही हमारा सम्बन्ध आता हो तो इतना ही है कि मन्द शीघ्रोच्च से ग्रह का अन्तर यानी केन्द्र और तदनुसार ग्रहस्थिति में जो फरक पड़ता है यह तत्त्व विदेशियों से प्राप्त हुआ होगा। यह तत्त्व हमें टालमी से पूर्व ही अवगत होने के कारण इसके आगे हमारे ज्योतिष का विकास स्वतन्त्र रूप से हुआ था। कुछ और छोटी-छोटी बातो का ज्ञान कदाचित् हमे विदेश से मिला हो। जातकस्कध का बिचार करने से यह मानना पडता है कि वह हमारे देश का ही है, इसकी उत्पत्ति मूलत. हमारे यहाँ ही हुई है। अब इस विषय में अपने प्रमाण उपस्थित करता हूँ।

प्रथम गणितस्कंध के विषय मे विचार किया जाता है। पहिले यह सिद्ध करता हूँ कि पञ्चसिद्धान्तिका के सिद्धान्त टालमी से पूर्व के हैं जिससे दूसरी बाते भी स्वतः ही प्रमाणित हो जायँगी। उपर्युक्त पॉच सिद्धान्त टालमी के पूर्व के है यह पहले दिखाया जा चुका है।

थीबो के विचार में वे टालमी से अर्वाचीन हे इसलिए इस पर कुछ विस्तारपूर्वक विवेचन किया जाता है।

पञ्चग्रहो के मन्दफल, शीघ्रफल ये दो सस्कार वासिष्ठ, पौलिश और सौर सिद्धान्तों

मे है। थीबो का कहना है कि ये सस्कार टालमी के ग्रथ से प्राप्त हुए थे, इसलिए वे टालमी से अर्वाचीन हैं। मानो टालमी को जो साधन उपलब्ध थे वे दूसरो को प्राप्त होने पर भी उनसे निकलने वाले अनुमानो की कल्पना करने वाला दूसरा कोई व्यक्ति जगतीतल पर उत्पन्न हो ही नही सकता था। रोमक सिद्धान्त मे पञ्चग्रहो का गणित नही है। इस ग्रन्थ से और हिपार्कस के ग्रन्थ से बहुत कुछ साम्य है, परन्तु थीबो का कहना है कि उसको भी टालमी के ग्रन्थ से अर्वाचीन मानना चाहिए। परन्तु थीबो की इस उक्ति के अतिरिक्त इन चार सिद्धान्तो को टालमी से अर्वाचीन मानने के पक्ष मे और दूसरा कोई प्रमाण नही है।

मै प्रथम यह दिखाना चाहता हूँ कि रोमक सिद्धान्त से दूसरे चार सिद्धान्त प्राचीन हैं। पैतामह सिद्धान्त रोमक सिद्धान्त मे प्राचीन है, इस विषय मे मतभेद नही है। शेष तीन सिद्धान्त उससे प्राचीन है इस विषय मे पिछले पृष्ठो मे मैने दो प्रमाण दिये ही है। इसके अतिरिक्त वासिष्ठ सिद्धान्त की बाते पञ्चसिद्धान्तिका मे है और वे रोमक सिद्धान्त की तुलना मे इतनी बाल्यदशा मे है कि वासिष्ठ सिद्धान्त रोमक सिद्धान्त से प्राचीन है, यह स्पष्ट प्रतीत हो जाता है। थीबो को भी यह बात मान्य है, ऐसा उनके उपर्युक्त मत से मालूम पडता है। अब पौलिश और सौर के विषय में विचार करना है। वासिष्ठ सिद्धान्त का वर्षमान पञ्चसिद्धान्तिका मे नही है। यदि हो तो भी न तो डॉ० थीबो की और न मेरी समझ मे वह आया। उसमे जो सूर्य स्पष्ट करने की प्रक्रिया है उससे वह मान करीब-करीब ३६५।१४।३२ आता है। वासिष्ठ सिद्धान्त की बाते इतनी बाल्यदशा मे है कि उसके वर्षमान को आगे के किसी सिद्धान्त ने नही माना है। दूसरे सिद्धान्तो मे वर्षमान करीब-करीब ३६५।१४।३१ है। पौलिश और सौर सिद्धान्त ही ऐसे है जिनमे वर्षमान दिया हुआ है। इन दोनो मे यदि एक भी रोमक सिद्धान्त से पूर्व का न होता तो रोमक सिद्धान्त का वर्षमान इन सिद्धान्तो में आया होता, वह दूसरे सिद्धान्तो ने नही लिया इससे सिद्ध होता है कि इन दोनो में कम से कम एक रोमक से प्राचीन होना चाहिए। पौलिश और सौर सिद्धान्त मे यदि तुलना की जाय तो पौलिश सौर से भी बाल्यावस्था का मालूम होता है। इससे यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि पौलिश रोमक सिद्धान्त से प्राचीन है। साराश यह है कि पैतामह, वासिष्ठ और पौलिश रोमक से प्राचीन है। वासिष्ठ और पौलिश सिद्धान्तों मे ग्रहों के मन्दफल और शीघ्रफल ये दो सस्कार दिये है इसलिये थीबो के कथनानसार टालमी के अनुयायी होने के कारण वे उससे अर्वाचीन है। परन्तु मजे की बात तो यह है कि इन सिद्धान्तो मे मन्दफल और शीघ्रफल है ही नही। पञ्चसिद्धान्तिका के अन्तिम अध्याय मे ग्रहो की मध्यम और स्पष्ट स्थिति निकालने के नियम

है। उन नियमो का एक नमूना यहाँ दिया जाता है। इससे मेरे कथन की सत्यता सिद्ध हो जायगी। शुक्र सबधी गणित इस प्रकार है[1]—

"अहर्गण १४७ घटाकर शेष को ५८४ से भाग दीजिए, भागाकार (लब्धि) के जितने शुक्र के उदय होते है। इसी समय मे शुक्र की (मध्यम) गति वृश्चिक के पाँच अंश (अर्थात् ७ राशि और ५ अश) और २० कला होती है और शुक्र २६ दिन में (उदय के) कालाश के जितना जाकर पश्चिम मे उदय होता है। अहर्गण मे उदयसख्या का ११वाँ अश मिलाकर उससे शुक्रचार निकालना चाहिए। वह इस प्रकार है—प्रत्येक वार साठ-साठ अहर्गणो मे क्रम से ७४, ७३ और ७२ अश वह जाता है। आगे ८५ दिनो मे ७७ अंश और उसकेआगे तीन दिनो मे सवा अश जाता है। फिर वक्री होकर १५ दिन मे २ अश जाता है। इसके बाद पाच दिन मे वह पश्चिम मे अस्त हो जाता है। इसके बाद २० दिन मे वह मार्गी होता है। (इन तीनो बार प्रत्येक भ्रमण मे) वह चार अश जाता है। आगे२३२ दिनो में २५० अश जाकर पूर्व मे अस्त हो जाता है। फिर ६० दिनो मे ७५ अंश जाकर पश्चिम में उदय होता है।" इसमे मन्द-शीघ्र-फलो के विषय मे कुछ नही कहा है। इतना ही नही यह इङ्गित भी नही किया गया है। आकाश मे दीर्घकाल तक शुक्रचार देखकर इन स्थूल नियमो का गणित पञ्चसिद्धान्तिका के अन्तिम अध्याय मे दिया है। सहिता ग्रन्थो मे ग्रहचार का विचार रहता है। इससे और भारत इत्यादि ग्रन्थों से यह स्पष्ट होता है कि ऐसे अनुभवो को प्राप्त करने की प्रवृत्ति हम लोगो मे वर्तमान थी। इस विषय मे दूसरा विशेष प्रमाण यह है कि गुरु के उदय से सवत्सरारम्भ करने की पद्धति बहुत प्राचीन काल से हमारे देश मे प्रचलित थी। वह नक्षत्रो पर आधारित थी। अर्थात् तथोक्त ग्रीक लोगों से गणित प्राप्त करने के पहिले यह प्रचार मे थी। यह पद्धति गणित पर आधारित न होकर केवल आकाश के प्रत्यक्ष अवलोकन द्वारा संवत्सरारम्भ का निर्णय करने की थी। अर्थात् इस पद्धति के लिए गुरु की गत का अनुभव सैकड़ों वर्ष तक करना पडा होगा। इसी अनुभव पर, गुरु की मध्यम और स्पष्ट गति के नियम बनाये गये होगे। इतना ही नही, इस पद्धति का पूर्ण विचार करने पर यह निश्चय हो जाता है कि उनको बाध्य होकर ये नियम बनाने पडे होंगे। उपर्युक्त अध्याय का गणित पञ्चसिद्धान्तिकोक्त सौर सिद्धान्त के अहर्गणो मे नही मिलता, ऐसा मुझे प्रत्यक्ष गणित करने पर मालूम हुआ। इसके अतिरिक्त पञ्चसिद्धान्तिका से सौर सिद्धान्त का ग्रह-स्पष्टीकरण बिलकुल भिन्न है। अतएव यह

---

१. थीबो की पञ्चसिद्धान्तिका, अ० १८, श्लोक १-५।

सिद्ध होता है कि इस अन्तिम अध्याय का गणित सूर्यसिद्धान्त का नही और वह मन्द-शीघ्रफल के ज्ञान पर आधारित न होकर केवल वेधो के अनुभव पर बैठाया हुआ है। साराश यह कि पैतामह, वासिष्ठ और पौलिश सिद्धान्त रोमक से प्राचीन है।

हम पहिले दिखा चुके है कि रोमक सिद्धान्त हिपार्कस के ग्रन्थ के आधार पर रचित हुआ था। हिपार्कस और टालमी का अत्यन्त निकट सम्बन्ध था। अतएव जिस काल मे रोमक सिद्धान्त भारत मे आया उस समय यदि टालमी के ग्रन्थ की रचना हुई होती तो हिपार्कस के ग्रन्थ के साथ वह भी भारत मे आ जाता। वह नही आया, अतएव यह सिद्ध होता है कि रोमक सिद्धान्त टालमी से प्राचीन है। अर्थात् पैतामह, वासिष्ठ, पौलिश और रोमक सिद्धान्त टालमी से प्राचीन है।

इसके अतिरिक्त इन चारो के और सौर सिद्धान्त के टालमी से प्राचीन होने के और भी दूसरे प्रमाण है। वे नीचे दिये जाते है।

हिपार्कस और टालमी के वर्षमान एक ही है। हम पहिले दिखा चुके है कि हम लोगो ने इन दोनो मे से किसी का या और तीसरे किसी स्थान का वर्षमान नही लिया। वैसे ही ग्रह-मध्यमगति, मन्दोच्च और पात, मन्दकर्ण, विक्षेपमान, अयनचलन, रवि-चन्द्र के परम मन्द फल, पञ्चग्रहो के परम मन्द शीघ्रफल, क्रान्तिवृत्त का तिर्यक्त्व, सूर्य-चन्द्र के लम्बन, उदयास्त कालाश, इनमे की कोई बात टालमी से और हमारे सौरादि पाँच सिद्धान्तो से नही मिलती। यह हम तत्तद् विषयो के विवेचन मे दिखला ही चुके है कि इनमे से किसी बात को हम लोगो ने टालमी से नही ग्रहण किया है। इतने पर भी थीबो का यह कहना कि हमारे ग्रन्थ और विशेषकर मन्दशीघ्र फल टालमी के आधार पर ही रचित है, आश्चर्य उत्पन्न करता है। दोनो की संख्याएँ नही मिलती, इसका कारण वह यह देता है कि हिन्दुओ ने सूक्ष्मता की ओर ध्यान नही दिया, परन्तु करण ग्रन्थो से जिनका परिचय है वे ऐसा नही कह सकते।

हमारे ग्रन्थो मे रवि का उच्च ७५, ७८ अथवा ८० अश है, और टालमी का रव्युच्च ६५$\frac{१}{२}$ अश है। हिपार्कस का भी इतना ही होना चाहिए। ६५$\frac{१}{२}$ के स्थान पर कोई ६५ या ६६ कर सकता है पर नौ या दस अश का अन्तर नही कर सकता। ज्योतिष-गणित का जिनको थोडा भी ज्ञान है वे इस बात से यह मानने के लिए बाध्य होगे कि थीबो के कथन मे कोई सार नही है। एक ग्रन्थ से गतिस्थित्यादिको के अङ्क दूसरे ग्रन्थो मे ग्रहण करने के समय हमारे ग्रन्थकार सूक्ष्मता की ओर कितना ध्यान देते थे, यह हमने गणितस्कन्ध के मध्यमाधिकार में, सब ग्रन्थो के परस्पर सम्बन्ध का आलोचना करते हुए, विस्तारपूर्वक दिखाया है। पञ्चसिद्धान्तिका, ब्रह्मगुप्त का खण्डखाद्य और भास्कर का करणकुतूहल इस विषय के स्पष्ट प्रमाण है। विकलाओं को न छोडने

के विषय मे भी हमारे ग्रन्थकार जागरूक है। टालमी के ग्रन्थ वाले रवि चन्द्र और पञ्च-ग्रहो के गणित के विशेष प्रकार हमारे ग्रन्थो मे नही है। टालमी के ग्रन्थ मे "ज्या" है और हमारे ग्रन्थो मे "ज्यार्ध" है। यह फर्क बहुत महत्व का है। ग्रीक ज्योतिष का पक्षपाती ह्विटने भी कहता है कि टालमी का सूर्यसिद्धान्त से कोई सम्बन्ध नही है। साराश पञ्चसिद्धान्तिकोक्त सिद्धान्त टालमी से प्राचीन है। ई० स० १५० पूर्व से ई० स० १५० तक की कालावधि में, ईसवी सन् के आरम्भकाल में रोमक सिद्धान्त भारतवर्ष मे आया होगा। शेष सिद्धान्त उससे प्राचीन है। वे शक सवत् से दो-तीन सौ वर्ष पूर्व ही रचे गये होगे और उनकी रचना के साधन कई शताब्दियों तक सग्रह किये जाते रहे होगे। इनकी रचना का काल पैतामह, वासिष्ठ, पौलिश, सौर और रोमक इनके पूर्वापरत्व के अनुसार हुआ होगा, ऐसा हम पहिले ही बतला चुके है। वासिष्ठ सिद्धान्त मे मेषादि विभाग है इसलिए उसका ई० स० ५०० से पूर्वकाल का होना सम्भव नही। कदाचित् उसकी रचना इसी काल में हुई हो। यदि उसको अपेक्षाकृत अर्वाचीन कहा जाय तब भी वह टालमी से कम से कम ५० वर्ष पूर्व का तो है ही, यह मानना पडेगा। इसलिए वह शकारम्भकाल के पूर्व का है। क्योकि यदि हम मान लें कि रोमक सिद्धान्त टालमी के पूर्व भारत मे आया तो मानना पडेगा कि वासिष्ठ और पौलिश सिद्धान्त उससे कम से कम ५० वर्ष पूर्व रचित हो गये होगे। हिपार्कस का रोमक इस देश में आने के पूर्व ही पौलिश सिद्धान्त की रचना हो गयी थी, चाहे ई० स० ५०० वर्ष पूर्व से लगाकर शकारम्भ के काल तक कभी उसकी रचना हुई हो।

अलेक्जैंड्रिया के पौलस (paulus) के नाम पर पौलिश सिद्धान्त का नामकरण हुआ, ऐसा बेरुनी (India, Vol. I p. 153) कहता है। इस पर कई लोग कहते है कि पौलिश सिद्धान्त ग्रीक लोगो से हमारे यहाँ आया। परन्तु जिस स्थान पर बेरुनी ने यह बात कही है वही पर वह कहता है कि सूर्यसिद्धान्त को लाट ने बनाया, वासिष्ठ सिद्धान्त को विष्णुचन्द्र ने बनाया, रोमक को श्रीषेण ने और ब्राह्म सिद्धान्त को ब्रह्मगुप्त ने बनाया।' पञ्चसिद्धान्तिका के वासिष्ठ, रोमक, ब्राह्म सिद्धान्त क्रमश. विष्णुचन्द्र, श्रीषेण और ब्रह्मगुप्त ने नही बनाये है यह निर्विवाद है। इससे यह स्पष्ट है कि पञ्चसिद्धान्तिका के ये सिद्धान्त बेरुनी कथित तीन सिद्धान्तो से भिन्न है। बेरुनी ने पौलिश सिद्धान्त के जो मान जहाँ-जहाँ दिये हुए है वे पञ्च-सिद्धान्तोक्त पौलिश सिद्धान्त के मानो से नही मिलते। ब्रह्मगुप्त का जो एक वाक्य मैंने उद्धृत किया है उससे मालूम होता है कि पौलिश और यवन भिन्न-भिन्न व्यक्ति थे। पुलिश संज्ञा सस्कृत में नही है, ऐसा नही कहा जा सकता, इसलिए पञ्च-

सिद्धान्तिका के पौलिश से ग्रीको का कोई सम्बन्ध न होना असम्भव नही। उत्पलोद्धत पुलिश सिद्धान्त वराह के समय मे नही था। ब्रह्मगुप्त ने जिसको यवन कहा है उसी का वह होना चाहिए। अतएव उसका शक ४२७ से ४५० तक किसी समय होना सम्भव है।

मेषादि संज्ञाएँ

अब मेषादि सज्ञा और विभाग के विषय मे थोड़ा विचार किया जाता है। मेषादि सज्ञाएँ हमारी नही है इस विषय मे कोई दृढ़ प्रमाण नही मिलता। क्रिय, तावुरि इत्यादि ग्रीक सज्ञाएँ वराह के वृहज्जातक मे आयी है, तथापि इनमे तथा मेषादि संज्ञाओ मे मूल सज्ञा कौन सी है यह कैसे कहा जा सकता है? मेषादि सज्ञाओ का अनुवाद क्रिय, तावुरि इत्यादि हो सकता है और तद्विपरीत वे क्रिय, तावुरि इत्यादि शब्दो के भाषान्तर हो सकते है। तारका-पुञ्जो को आकृति देने की कल्पना हम लोगो मे वर्तमान थी। मृगशीर्ष, हस्त, श्रवण, ये सज्ञाएँ आकृति पर से ही पडी है। तैत्तिरीय सहिता के नक्षत्रिय प्रजापति के विषय मे यह बात हम पहिले ही बता चुके है। हस्त और श्रवण प्रदेश बहुत छोटे है, यदि ऐसा कोई कहे तो ध्यान मे रखना होगा कि व्याध-युक्त सशीर्ष मृग और नक्षत्रिय प्रजापति मे तारकापुञ्ज एक राशि से बडे है। महा-भारत और पाराशरसंहिता मे ब्रह्मराशि शब्द आया है और उसको प्रत्यक्ष राशि की सज्ञा दी गयी है। इसलिए यह निश्चयपूर्वक कैसे कहा जा सकता है कि मेषादि सज्ञा की कल्पना हमारी नही थी? तथापि "मत्स्यौ घटी नृमिथुन सगद सवीण" इत्यादि राशि लक्षण वराह ने दिये है। उनके आधारभूत दूसरे वचन यवनेश्वर और सत्य के ही दिये है, आर्ष वचन नही। मेषादि राशि सम्बन्धी कथाएँ पाश्चात्यो मे मिलती है वैसी हमारे पुराणो मे नही मिलती। और मेषादि राशि क्रान्तिवृत्त के बारह विभाग के रूप में हमारे ग्रन्थो मे मिलती है, इसलिए केवल इतना ही कहा जा सकता है कि कदाचित् ये सज्ञाएँ मूलतः हमारी नही है। इससे अधिक कुछ नही कहा जा सकता।

परन्तु ध्यान देने की बात है कि केवल वारपद्धति और मेषादि सज्ञाओ मे कोई विशेष महत्व नही है। ग्रह की स्पष्ट गति-स्थिति के ज्ञान और उनके प्रमेयो मे ज्योतिष शास्त्र का महत्व है। हम लोग पहिले सावन दिन (अथवा तिथि) प्रथम द्वितीय ऐसा गिनते थे। उनकी जगह वारो का प्रयोग किया जाने लगा। अथवा १२ विभागो की षडशीति इत्यादि सज्ञाएँ हम लोगो की थी, उनको छोडकर मेषादि सज्ञाएँ ग्रहण की, इसमे विशेष कुछ नही हुआ। क्रान्तिवृत्त के १२ विभाग हम लोगो मे पहिले से ही थे, यह हम वेदाङ्गज्योतिष के विचार से, पारस्करसूत्र तथा महाभारत ग्रन्थ के विचार

मे, दिखा चुके हैं। उसी प्रकार वृत्त के ३६० अश के कलात्मक ६० विभागो की पद्धति मूल मे हमारी ही थी, यह हमने वेदाङ्गज्योतिष विचार मे दिखाया है। राशिविभागो के अनुसार ग्रहस्थिति बताने की पद्धति मेषादि विभाग प्रचलित होने के बाद उपयोग मे आयी, ऐसा प्रतीत होता है।

ग्रहस्पष्ट-गति प्रमेय हम लोगो ने ग्रीको से लिया हो, यह सम्भव है। परन्तु वह वासिष्ठ सिद्धान्त मे नही है। अर्थात् वासिष्ठ सिद्धान्त इसके पूर्व का है और मेषादि विभाग इस सिद्धान्त में दिये हुए है, इसलिए यद्यपि यह सम्भव है कि मेषादि विभाग हमारे यहाँ खाल्डिया या मिस्र से आये हो तथापि यह भी स्पष्ट है कि ग्रहस्पष्ट-गति प्रमेय उनके साथ हमारे यहाँ नही आया। आगे जाकर मैंने दिखाया है कि इस प्रमेय का ज्ञान हम लोगो मे स्वतन्त्रतापूर्वक उद्भूत हुआ। इसलिए यद्यपि यह मान भी लिया जाय कि मेषादि संज्ञा और विभाग हम लोगो ने खाल्डिया अथवा मिस्र से लिये थे तथापि इससे हम लोगो मे कोई न्यूनता नही आ जाती। ये संज्ञाएँ ई० स० के ५०० वर्ष पूर्व हमारे यहाँ आयी थी, यह हम पहिले ही दिखा चुके है।

क्या हमने ग्रीकों से कुछ लिया ?

हम लोगो में वेध परम्परा, वेध-कौशल तथा अवलोकन की शक्ति नही थी यह आरोप सर्वथा मिथ्या है, यह हम द्वितीय भाग के आरम्भ मे, विक्षेपमान-विचार, अयन-चलन-विचार और वेध प्रकरण तथा दूसरे सदर्भो मे दिखा चुके है। दूसरे देशों में जो प्राचीन वेधो के उल्लेख मिलते है वे ई० स० पूर्व ७२० का ग्रहण और ई० स० पू० ४३०वें वर्ष मे मेटन द्वारा किया हुआ उदगयनावलोकन, ये है। हमारे यहाँ उदगयनावलोकन ई० स० के १४०० वर्ष पूर्व किया गया था। पहिले भाग के उपसहार मे ग्रहगति स्थिति विषय का विवेचन किया गया है। इससे यह सिद्ध होता है कि हम लोगो मे ग्रहस्थिति अवलोकन की प्रवृत्ति पहिले से ही थी। वासिष्ठ और पौलिश सिद्धान्तो मे ग्रहस्पष्ट-गतिस्थिति का जो विवेचन पहिले किया गया है उससे यह स्पष्ट है कि हमारे पूर्वज खगोलस्थित पिण्डों का अवलोकन कर लिख रखते थे और उन पर से नियम बनाते थे, यह कोई अस्वीकार नहीं कर सकता। सारांश यह कि वेधसिद्ध बाते भारतीयो को सूझ ही नही सकती, यह कहना व्यर्थ सिद्ध होता है।

अब हम इस बात का विवेचन करेंगे कि दूसरे देशो से हमने गणितस्कन्ध सम्बन्धी कौन सी बाते लीं। वर्षमान, ग्रह-मध्यमगति, मन्दोच्च और पात, मन्दकर्ण, विक्षेपों के मान, अयनचलन, रविचन्द्र-परममन्दफल, पाचो ग्रहो के परम मन्द और शीघ्रफल,

क्रान्तिवृत्ततिर्यक्त्व, सूर्यचन्द्र लबन, उदयास्त कालाश; इनमे कोई बाते हम लोगो ने विदेशियों से नही सीखी, यह हम तत्तद् विषयक विवेचन मे दिखा चुके है। हिपार्कस को केवल रविचन्द्र-स्पष्टीकरण मालूम था, ग्रहस्पष्टीकरण का ज्ञान उसको नही था। वह टालमी के पूर्व किसी पाश्चात्य ग्रन्थ मे नही मिलता, यह बात ग्राट ने पाश्चात्य ज्योतिष के इतिहास मे स्वीकार की है (देखो Grant's History of Astronomy, chapter xviii तथा थीबो की सम्मति)। प्रतिवृत्त कल्पना हिपार्कस की होनी चाहिए यह ह्विटने और कोलब्रुक के रुख से मालूम पडता है, परन्तु पञ्चग्रह स्पष्टीकरण पर हिपार्कस का कोई ग्रथ नही है। अतएव यह कहने का अवकाश ही नही रह जाता कि हम लोगो ने पञ्चग्रहों के मन्दशीघ्र फल निकालने की रीति हिपार्कस से सीखी होगी। हिपार्कस और टालमी के वर्षमान एक ही है। क्रातिवृत्त तिर्यक्त्व का सिद्धान्त टालमी ने हिपार्कस से लिया, यह ह्विटने भी स्वीकार करता है। सूर्यमन्दोच्च और रविपरमफल टालमी ने हिपार्कस से लिये होगे ऐसा मै पहिले दिखा चुका हूँ। इनमे से कोई सिद्धान्त हमारे ग्रन्थो मे नही है। वैसे ही चन्द्र-सूर्य का परमलम्बन हमारा और हिपार्कस का एक नही है। कोलब्रुक ने कहा है कि चान्द्रमास का मान जितना हिन्दुओ का शुद्ध है उतना ग्रीक लोगो का भी नही था। वेधप्रकरण मे हमने दिखाया है कि वेध लेने के यन्त्रो में भी हम लोगो को ग्रीक लोगो से कुछ नही मिला। इसलिए हिपार्कस और टालमी की कृतियो मे जो कुछ उपलब्ध है उनसे प्रतिवृत्त कल्पना के अतिरिक्त हम लोगो ने कुछ नही पाया। इस विषय मे और भी जो महत्व के प्रमाण है वह मै नीचे देता हूँ—

हिपार्कस और टालमी को अयनचलन का ज्ञान था और उन्होने उसकी गति का वर्षमान ३६ विकला ठहराया था। परन्तु हमारे प्रथम ज्योतिष ग्रन्थो मे अयनचलन की कल्पना ही नही है। पीछे हम लोगो को स्वतन्त्र रूप से इसका पता लगा और हम लोगो ने इसका वर्षमान ६० विकला निश्चित किया। हमारे ग्रन्थ कभी क्यो न बने हों परन्तु उनके बनने के पूर्व हिपार्कस और टालमी के ग्रन्थो का यदि हमे ज्ञान होता तो उनकी अयनचलन कल्पना तथा उसके मान हमारे ग्रन्थो मे आये बिना कैसे रह सकते थे? दूसरी बात यह है कि मन्दोच्च की भी गति होती है यह टालमी को मालूम नही था। हमारे ग्रन्थो मे इसकी गति मानी है और आधुनिक ज्योतिष से भी यह सिद्ध हुआ है। तीसरी बात यह है कि ग्रीक ज्योतिष मे रेखागणित का विशेष प्राबल्य है, हम लोगों मे वह बिलकुल नही। इससे यह सिद्ध होता है कि हिपार्कस तथा टालमी के ग्रन्थो में से हमे प्रतिवृत्त पद्धति के अतिरिक्त कुछ नही मिला।

यदि हमने ग्रीको से कुछ प्राप्त किया हो तो वह हिपार्कस और टालमी के पूर्व

प्राप्त किया होगा। परन्तु विचार करने का विषय है कि टालमी और हिपार्कस के पहिले ग्रीको के पास क्या था? रविचन्द्र स्पष्टीकरण और पञ्चग्रह स्पष्टीकरण ये दो ज्योतिष मे महत्व के विषय है। इनका ज्ञान हिपार्कस के पहिले पाश्चात्यो को था ही नही, यह सभी यूरोपियन ग्रन्थकार स्वीकार करते है। मन्द-फल-सस्कारपूर्वक चन्द्रसूर्य-स्पष्टीकरण करने की प्रक्रिया रोमक सिद्धान्त के यहाँ आने के पूर्व रचित पुलिश सिद्धान्त मे दी हुई है। इस पर से यह स्पष्ट अवगत होता है कि वह हिपार्कस के पूर्व सिद्ध की गयी थी। अत. यह प्रश्न अनुत्तरित रह जाता है कि हमने ग्रीक लोगो से क्या लिया?

म्लेच्छा हि यवनास्तेषु सम्यक् शास्त्रमिद स्थितम्।

इस श्लोक से यह परिणाम निकाला जाता है कि हम लोगो ने यवनो यानी ग्रीक लोगो से ज्योतिषशास्त्र सीखा। परन्तु स्मरण रखने की बात है कि इस वचन का सम्बन्ध मुख्यत. जातक से है, यह हम जातक विचार मे दिखलायेगे। ब्रह्मगुप्त के लेखानुसार यवनो का कोई गणित ग्रन्थ अवश्य था परन्तु वह उत्पलोद्धृत पुलिश सिद्धान्त था, जो वराह के बाद शक ४२७ से ५५० तक कभी रचा गया होगा, यह हम पहले दिखा चुके है। हमारा ज्योतिषशास्त्र मूल सूर्यसिद्धान्त में वराह से पहिले ही उत्तमावस्था को प्राप्त हो गया था। परन्तु पञ्चसिद्धान्तिका मे एक स्थान पर यवनपुर से उज्जयिनी का देशान्तर दिया हुआ है। रोमक नगर मे म्लेच्छावतार का रूप लेकर मै तुम्हे ज्योतिष के ज्ञान का उपदेश करूँगा, यह सूर्य ने मय से कहा है। इस आशय का एक श्लोक सूर्यसिद्धान्त मे मिलता है। वैसे ही—

भूमि-कक्षा-द्वादशाशे लकायाः प्राक् च शाल्मले।
मयाय प्रथमप्रश्ने सौरवाक्यमिदम् भवेत्॥

शाकल्यब्रह्मसिद्धान्त अ० १

यह वाक्य[1] शाकल्यब्रह्मसिद्धान्त मे है। आज तक किसी यूरोपियन के ध्यान में यह श्लोक आया हुआ नही मालूम होता, परन्तु इसका विचार निष्पक्ष रूप से किया जाना चाहिए। पृथ्वी के द्वादशाश पर यानी लका से ३० अश पूर्व मय और सूर्य का सवाद हुआ था यह इससे सूचित होता है।

---

१. यह वाक्य मुझे वें बा० केतकर न बतलाया। मुझे शाकल्य ब्रह्मसिद्धान्त की तीन प्रतियों में प्रथम अध्याय के १११ श्लोक तक का ही खण्ड मिला है, परन्तु केतकर की प्रति में इसके आगे भी कुछ श्लोक है जिनमें उपर्युक्त श्लोक भी सम्मिलित है।

भारतीयो को ज्योतिष ज्ञान प्राप्त होने के लिए लका से ३० अश पूर्व ऐसा कोई उपयुक्त स्थान नही है। अत यह श्लोक विश्वसनीय नही माना जा सकता। परन्तु सूर्यसिद्धान्त की कथा को इस वाक्य से समर्थन प्राप्त होता है और यवनो से हमारे ज्योतिष गणित का कुछ सम्बन्ध अवश्य है ऐसा प्रतीत होता है। दोनो की प्रतिवृत्तादि पद्धति कुछ अंशो मे समान है इसलिए इस अनुमान को आधार मिलता है। परन्तु हमने उनके कोई मान ग्रहण नही किये हैं, यह भी स्पष्ट कर दिया गया है। अतएव पूर्ण विचार करने के बाद वर्जेस के कथनानुसार यही अनुमान करना पडता है कि दोनो राष्ट्रो को एक दूसरे से कुछ दिग्दर्शन अवश्य हुआ था और वह भी बहुत ही प्राचीन काल मे हुआ था (मेरे मत मे हिपार्कस के पहिले), क्योकि अर्वाचीन काल मे हिन्दुओ ने कुछ लिया यह यदि हम मान लें तो क्या लिया यह कहना कठिन है, क्योकि दोनो की सख्याएँ बिलकुल नही मिलती।

अतएव दिग्दर्शन किसको किससे हुआ इसका विचार करना है। 'केन्द्र' सज्ञा बहुत महत्त्व की है मन्दशीघ्रोच्च से ग्रहो का जो अन्तर होता है उसको केन्द्र कहते है। और तदनुसार मन्दशीघ्रफल उत्पन्न होते हैं। केन्द्र शब्द ग्रीक या दूसरी किसी भाषा का होना चाहिए। वह सस्कृत का नही मालूम पडता। इससे यह प्रतीत होता है कि "केन्द्रानुसार ग्रहो की मध्यमस्थिति मे अन्तर पडता है" यह तत्व यवनो से हमे प्राप्त हुआ। यह तत्व पहिले पहल पुलिश सिद्धान्त मे दृष्तिगत होता है और जैसा कि हम बता चुके हैं यह सिद्धान्त हिपार्कस के ग्रन्थ के भारतवर्ष मे आने के पहिले रचित हो चुका था। प्रतिवृत्त-पद्धति और उस पर आधारित गणित का उपयोग, ग्रहो की मध्यम स्थिति का निर्णय करने के लिए हिपार्कस के पहिले किसी ने नही किया था, ऐसा कोलब्रुक इत्यादि विद्वानो के अभिमतो से स्पष्ट है। परन्तु कोलब्रुक का कहना है कि हिपार्कस के पहिले प्रतिवृत्त की कल्पना अपोलोनियस ने की थी। इसी लिए अपोलोनियस या दूसरे किसी कल्पक के द्वारा साक्षात् या परपरा से यह पद्धति भारत मे आयी, परन्तु उस समय वह अपूर्ण स्थिति मे थी। यही कारण है कि यद्यपि भारतीय तथा ग्रीक प्रतिवृत्त पद्धति में साम्य है तथापि वैषम्य काफी है। पुलिशसिद्धान्त का यवन-ज्योतिष से बस इतना ही सम्बन्ध है। पुलिश मे भुजज्या का प्रयोग किया गया है, इसे हम लोगों ने यवनो से नही लिया है क्योकि टालमी के ग्रन्थ मे भी भुजज्या नही है। साराश यह है कि यदि परकीयो से हम लोगो को कुछ मिला भी हो तो ग्रीक अथवा बैबिलोनियन लोगो से हमे उपर्युक्त नियम का दिग्दर्शन मात्र हुआ था, दूसरा कुछ नही मिला। वेधप्राप्त बातो इत्यादि का कोई क्रमबद्ध ज्ञान हमें प्राप्त नही हुआ। जितना कि यूरोपियन लोग समझते है उतने हम परकीयों के मुखापेक्षी नही रहेहै।

प्राचीन काल मे एक दूसरे से सूक्ष्म ज्ञान प्राप्त करने के मार्ग मे कितनी अडचनें थी इसका विचार ह्विटने इत्यादि किसी ने नही किया। वर्तमान काल मे हमारा और यूरोपियन लोगो का सम्बन्ध प्राय: ३०० वर्ष से है। इसमे ७५ वर्ष से तो इतना घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है जिसका सहस्राश भी प्राचीन काल मे सम्भव नही था। इस अवधि मे हम लोगो ने यूरोपियनो से कितना ज्योतिष सीखा है? पृथ्वी और दूसरे ग्रह सूर्य के चारो ओर घूमते है, इतना ही साधारण तत्त्व लोगो को अवगत होगा। परन्तु केवल वे लोग जिन्हे उच्च शिक्षा प्राप्त हुई है और जिन्होने ग्रहो की गति के विषय मे आधुनिक उपपत्तियो का सम्यक् अध्ययन किया है, इस तत्व को समझ सकते है। साधारण लोगो को इस विषय का कुछ भी ज्ञान नही। आधुनिक ज्योतिष की ग्रहस्पष्ट-गत्युपपत्ति मे जितनी क्लिष्टता है उससे कही अधिक हमारे और ग्रीक गणित की उपपत्ति मे थी। जिन लोगो को उपपत्ति समझ में आती भी हो उनमे कितने ग्रह-गणित करते है? यह सत्य है कि जो लोग उपपत्ति समझते है वे ग्रहगणित भी समझ सकते है और तदनुसार गणना भी कर सकते है। परन्तु इस काल मे भी यूरोपियन ग्रन्थो की सहायता से ज्योतिष गणना करने वाले दस-पन्द्रह से अधिक विद्वान् हमारे देश मे नही है। आज तक यूरोपियन ग्रन्थो के आधार पर लिखा गया ज्योतिष गणित का भारतीय भाषाओ मे केवल एक ग्रन्थ प्रकाशित हुआ है और वह केरोपत नाना का है। यदि इस समय ऐसी अवस्था है तो प्राचीन काल मे जब ज्योतिषशास्त्र जाननेवाले विद्वानो से भेट होना प्राय असम्भव सा था और भेट हो भी गयी तो भाषान्तररूपी अड़-चन का उल्लघन करना तो सम्भाव्य बातो के परे था, तब कुछ स्थूल विषयो को छोड कर एक दूसरे से शास्त्रीय सूचनामात्र मिलने के अतिरिक्त और क्या हो सकता था?

हमारा स्वतन्त्र प्रयत्न

रविचन्द्र-मध्यगति का विचार हम लोग वेदागज्योतिषकाल मे अर्थात् ई० स० के १४०० वर्ष पूर्व करने लगे थे। बार्हस्पत्य द्वादश-सवत्सरचक्र कश्यपादिको के वचनों मे है और वह नक्षत्रो पर आधारित है अत. उसका ग्रीको से कोई सम्बन्ध नही। इसके अनुसार गुरु-भगण मे सामान्यत. १२ वर्ष लगते है, यह बात हमे अति प्राचीन काल में ही ज्ञात हो गयी थी। इसी प्रकार अन्य ग्रहो के विषय मे भी होना सम्भव है। यह सब ज्ञान हमें स्वतन्त्र रूप से ही प्राप्त हुआ था, जो पौलिश और वासिष्ठ सिद्धान्तो के ग्रहगणित से सिद्ध है। वृत्त के अश-कलादि विभाग की कल्पना मूलत हमारी ही है, यह हम वेदाङ्गज्यो-तिष का विवेचन करते समय तथा और अन्य कई प्रसंगो में दिखला चुके है। मूल वासिष्ठ सिद्धान्त का ग्रीको से कोई सम्बन्ध नही। उसमे अश कला विकला आदि विभाग

दिये हुए है। जिस काल मे ग्रीक लोगो से हमारा परिचय होना सम्भव नही था उस काल मे ही हम लोग ग्रहो की स्थिति, उनके वक्रमार्गित्व, उनकी युति इत्यादि विषयो का विचार करने लगे थे, यह बात हमने महाभारत के विवेचन मे और प्रथम भाग के उपसहार मे स्पष्ट कर दी है। ग्रह उदित होने के बाद इतने दिनो मे अस्त होगा, अन्यथा मार्गी या वक्री होगा इसके स्थूल नियम पञ्चसिद्धान्तिका मे दिये हुए है। आजकल के ग्रन्थो मे भी नियम दिये रहते है परन्तु उनको विशेष महत्व नही दिया जाता। पञ्चसिद्धान्तिका और खण्डखाद्य मे इन नियमो को बडा महत्त्व दिया गया है। यह स्पष्ट है कि ये बाते पूर्व परम्परा के अनुसार लिखी गयी है, क्योकि ग्रहस्पष्टगति की उपपत्ति को समझने से पूर्व ऐसे नियम बनाने के प्रयत्न स्वभावत. हमारे यहाँ किये गये होगे। ऐसा सचमुच हुआ भी था, यह महाभारत मे बार-बार आये हुए उल्लेखो से और पञ्चसिद्धान्तिका मे दिये हुए तत्सम्बन्धी नियमो से स्पष्ट हो जाता है। साराश यह कि अनेक प्रमाणो से यह सिद्ध हो जाता है कि रविचन्द्र-स्पष्टीकरण और ग्रहस्पष्टीकरण के साधन तैयार करने के हमारे प्रयत्न स्वतन्त्र रूप से होते रहे। उन प्रयत्नो को केन्द्रानुसारी फलसस्कार के तत्त्व की सहायता मिलते ही हिपार्कस और टालमी के समान यहाँ भी स्वतन्त्र विचार होकर मूल पुलिश और मूल सूर्यसिद्धान्त के रूप मे वे प्रकट हुए। केन्द्रानुसारी फलसस्कार के दिग्दर्शन के अतिरिक्त ग्रीक लोगो से हम लोगो को कुछ नही मिला, यह मान लेने से ही भारतीय और ग्रीक ज्योतिष मे जो भिन्नता है वह स्पष्ट हो जाती है। यदि केन्द्र शब्द सस्कृत होता और मय-सूर्यसवाद तथा यवनपुर के देशान्तर न दिये रहते तो बर्जेस के समान हमारा भी यही मत होता कि ज्योतिष गणित का दिग्दर्शन ग्रीक लोगो को भारतीयो से प्राप्त हुआ। यवनो से हमे जो सूचनाएँ मिली वे अवश्य महत्त्व की है और इसलिए हम लोगो ने उनकी उपयोगिता मानी है और मुक्त कठ से इसे स्वीकार किया है। जिन भारतीयो ने उस दिग्दर्शन के आधार पर भारतीय ज्योतिष-मन्दिर की स्थापना की यह बात उनके लिए भूषणास्पद ही है।

टालमी के ग्रन्थ मे अश के ६० भाग और प्रत्येक भाग के ६० विभाग दिये हुए है। इस आधार पर बर्जेस ने यह कहने का साहस किया है कि टालमी से ही हिन्दुओ को ज्योतिष का सर्वस्व मिला है। परन्तु टालमी से पूर्व के वासिष्ठ सिद्धान्त में ये विभाग हैं और यह बात निर्विवाद है कि उनका मूल दिन के घटी-पलादि के साठ-साठ विभाग में पाया जाता है जो हमारा है। ग्रीको मे टालमी के अतिरिक्त कोई ६०।६० विभाग नही करता, इसलिए यह स्पष्ट है कि ये विभाग टालमी को भारतीयो से मिले थे।

ग्रहस्थिति-गणना का आरम्भस्थान मूल मे रेवती नही था। वह शक ४४४ के

लगभग प्रचार मे आया। ई० स० के प्राय. ५७९ वर्ष पूर्व वसन्त-सपात अश्विनी नक्षत्र मे था यह हम पहले दिखा चुके है। अत पञ्चसिद्धान्तिकोक्त सिद्धान्तो के आरम्भ-स्थान अथवा अश्विन्यादि स्थान, तत्तत् सिद्धान्तो के रचनाकाल से शक ४४४ तक, स्थिर नही थे परन्तु वसन्तसपात का यही स्थान था, ऐसा थीबो का कथन है। वासिष्ठ सिद्धान्त के सम्बन्ध मे तो यह स्पष्ट ही है। पौलिश सिद्धान्त का आरम्भ-स्थान कौन सा था यह स्पष्ट नही है। परन्तु उसका वर्षमान निरयन वर्षमान के आसपास है इसलिए उसका आरम्भस्थान विषुवायनाश से मिलता हो ऐसा ही होना चाहिए। उस वर्षमान के बहुत दिन तक प्रचलित न रहने के कारण उस वर्षमान से उसमे कोई बाधा नही उत्पन्न हुई। सूर्यसिद्धान्त मे गणितारम्भ कलियुगारम्भ से है। इसे और इसके वर्षमान को मान लेने से सायन मेष मे मेषसक्रमण होने का काल लगभग शक ४५१वें वर्ष मे आता है। वराह-सहिता के अनुसार मूल सूर्यसिद्धान्त का रचनाकाल इतना अर्वाचीन नही है। यह काल जितना पीछे की ओर जायगा उसमे प्रति ६० वर्ष मे एक अश के हिसाब से भूल होगी। इससे यह अनुमान होता है कि वर्ष का मान या वर्तमान कलियुगारम्भ से गणित का आरम्भ मानना इन दोनो बातो मे कोई एक बात मूलसूर्यसिद्धान्त मे वराह के समय से भिन्न थी। और वराह ने जो-जो बाते दी है उनका वराह से पूर्व सौ दो सौ वर्षो मे किसी ने प्रचार किया होगा। कुछ भी हो, टालमी के ग्रन्थ के कोई भी मान सूर्यसिद्धान्त मे नही है और टालमी का सिद्धान्त कम से कम शक ५०० तक हमारे देश मे नही आया था।[1] मूल सूर्यसिद्धान्त कभी का क्यो न हो उसमे भारतीय ज्योतिष का जो स्वरूप दृष्टिगत होता है वह उसको ग्रीक सहायता के बिना प्राप्त हुआ था। केन्द्रानुसारी फलसस्कार के व्यतिरिक्त और दूसरे कोई महत्त्व के सिद्धान्त हम लोगो ने ग्रीक लोगो से लिये थे, इसका एक भी प्रमाण आजतक किसी ने नही दिया है।

सिद्धान्त-स्थापना काल

हिपार्कस के पूर्व ई० सन् से दूसरी या तीसरी शताब्दी पहिले, जब ग्रीक लोग भारत मे अधिक मात्रा मे आते-जाते थे, उस समय यह तत्त्व भारत मे आया होगा। उस तत्त्व का ज्ञान होने के पहिले ही इस देश मे ग्रह-गति-स्थिति निकालने की पर्याप्त सामग्री सगृहीत हो गयी थी। उसके आते ही पुलिश-सिद्धान्त रचा गया होगा। इसके बाद रोमक सिद्धान्त तैयार हुआ। तत्पश्चात् हमारे ज्योतिष का मूल सूर्यसिद्धान्त में जो

---

१. आगे राजा जयसिंह तक हमारे देश में उसके आने का कोई प्रमाण नहीं मिलता।

रूप प्राप्त है वह सम्पन्न हुआ, परन्तु यह कहना कठिन है कि यह शकारम्भ के पूर्व हुआ या उसके कुछ वर्ष बाद।

संहिता

सहिता-स्कन्ध के विषय मे कोई झगडा नही है। उसमे पदार्थविज्ञान शास्त्र की बहुत सी शाखाएँ हैं। तीनो स्कन्धो मे हमारा ध्यान इस स्कन्ध की ओर विशेष रूप से आकर्षित हुआ था, यह बात इस स्कन्ध का साधारण अवलोकन करने से ही दृष्टिगत होती है। यह स्कन्ध हमारा है यह बात जितनी सत्य है उतनी भषणास्पद भी है।

जातक स्कन्ध

अब यह विचार करना है कि क्या जातक-स्कन्ध हम लोगो ने पाश्चात्यो से लिया था? इस विषय का समाधानकारक विवेचन व्हिश और वेबर ने किया है,[1] ऐसा ह्विटने लिखता है। यह लेख मैंने स्वय नही देखा है। इसलिए इस विषय मे इन विद्वानो को विचार करने का कितना अधिकार था, उसके सामने कौन से साधन उपस्थित थे और उनके तर्क क्या है यह मुझे ज्ञात नही, परन्तु इस विषय मे साधक-बाधक प्रमाण जो मुझे मिले हैं उन्ही के आधार पर नीचे विचार किया गया है।

जैकोबी[2] ने लिखा है कि द्वादश घरो की जन्मकुण्डली से फल बताने की जातक पद्धति फारमीकस मैटरनस (ई० स० ३३५-३५४) के ग्रन्थ मे मिलती है। इसके पश्चात् यदि वह भारत मे आयी हो तो उसको आने मे कोई ५० वर्ष लगे होगे। तब से वराह तक (ई० स० ५०० तक) ५०-७५ वर्ष की अवधि मे इस विषय के ६ आर्य ग्रन्थकार और ५ आर्ष ग्रन्थकार होना बिलकुल ही असम्भव मालूम होता है। इसी एक प्रमाण से जातक मूलत हमारा ही है यह निर्विवाद सिद्ध होता है। टाइट्रा बिब्लास (Titrabiblas) नामक जातक ग्रन्थ टालमी का कहा जाता है और अलमाजेस्ट फलग्रन्थ भी टालमी का है, यह भी कोई-कोई कहते हैं परन्तु यह प्रमाणित नही है। इसको यदि सत्य भी माना जाय और यह मान लें कि उसका ग्रन्थ भारत मे आया तो उसके समय (ई० स० १५०) से वराह के समय तक ३५० वर्ष होते हैं। परन्तु वराह से पहिले सात-आठ सौ वर्ष पूर्व से जातक पद्धति हमारे देश मे थी यह हम ऊपर दिखा चुके हैं। दूसरी बात यह है कि अथर्वज्योतिष मे जातक पद्धति

---

१. **देखो ह्विटने का लेख** Trans. of Literary Society, Madras (1827) **और वेबर का लेख** (Indische Studien, 11 p. 236)

२. Weeber, History of Indian Literature, p. 251.

के मूलतत्त्व निहित है। उसमे १२ के स्थान पर केवल नौ स्थान है। नौ में जन्म, संपत्, नैधन अर्थात् पहला, दूसरा तथा सातवाँ स्थान वर्तमान द्वादश स्थानवाली कुण्डली के १।२।८ स्थानो से मिलते है। अथर्वज्योतिष मे जन्म से १०वाँ नक्षत्र कर्म नक्षत्र है। आधुनिक पद्धति में १०वाँ स्थान कर्म स्थान है। अथर्वज्योतिष के ९ स्थान वर्तमान जातक के १२ स्थानो के किसी न किसी स्थान मे अन्तर्भुक्त हो जाते है। अथर्व-ज्योतिष की जातक पद्धति भृगुक्त कही जाती है। अथर्व-ज्योतिष मेषादि सज्ञा प्रचार मे आने के पहिले यानी शकारम्भ के ५०० वर्ष पूर्व से ही प्रचलित है, यह हम पहिले दिखला चुके है। इससे यह सिद्ध होता है कि जातक पद्धति शकारम्भ से ५०० वर्ष के पहिले से हमारे देश मे स्वतन्त्र रूप से प्रचलित थी। मेषादि सज्ञाओ की कल्पना हमारे देश मे उद्भूत होने के बाद या परदेश से इस देश मे आने के बाद सम्प्रति जो जातक पद्धति प्रचलित है उसका प्रचार इस देश मे हुआ होगा। अथर्वज्योतिष मे जन्मकुण्डली का पहिला स्थान चन्द्र का था, प्रचलित जातक पद्धति मे पहिला स्थान लग्न का है, यही कालान्तर मे उसमे मुख्य अन्तर हुआ। इस सम्बन्ध मे एक बडे महत्त्व की बात यह भी है कि जातक मे लग्न का जो अर्थ है वही अर्थ वासिष्ठ सिद्धान्त मे भी है। जन्मकुण्डली बनाने की पद्धति उत्पन्न होने के कारण ही यह शब्द वासिष्ठ सिद्धान्त मे आया होगा। अन्यथा इसका और दूसरा कोई कारण नही हो सकता। यह पहिले सिद्ध कर चुके है कि वासिष्ठ सिद्धान्त शकारम्भ से लगभग ५०० वर्ष पूर्व का है और अन्ततोगत्वा टालमी से ५० वर्ष पूर्व का है। अत. जिस समय ग्रीस मे जातक ग्रन्थ नही बने थे उस समय हमारे यहाँ जातक का अति महत्त्व का शब्द 'लग्न' प्रचार में आ गया था और जन्मकुण्डली का जातक शास्त्र उत्पन्न हो गया था। वृहत्सहिता के ग्रहचाराध्याय मे (अ० १०४) ग्रहगोचर फल दिये हुए है। उसमें प्रथम स्थान चन्द्र का है। उस अध्याय में माडव्य का उल्लेख है। मांडव्य आर्ष ग्रन्थकार था। इस मांडव्य के ग्रन्थ मे चन्द्रकुण्डली मुख्य थी अथवा कम से कम चन्द्र की स्थिति पर से विचार किया गया था। मेषादि १२ राशियाँ प्रचार मे आने पर अथर्वज्योतिष के ९ स्थानों की चन्द्रकुण्डली के स्थान पर १२ स्थानो वाली राशि-कुण्डली की कल्पना होना स्वाभाविक है। अतः जन्मकुण्डली की पद्धति पराशर, गर्ग आदि किसी ऋषि ने प्रचलित की, यह मानना सयुक्तिक है। हमारी यह पद्धति कालान्तर मे पश्चिम की ओर गयी और यवनों ने इस शास्त्र पर ई० सन् के १५० वर्ष बाद अपने ग्रन्थ लिखे। स्मरण रखना चाहिए कि टालमी के पहिले ग्रीस में किसी जातक ग्रन्थ का पता नही चलता। यह हो सकता है कि उसने उसे कुछ बढ़ाया हो। तीसरी महत्त्व की बात यह है कि यवनेश्वर और वराह का मतभेद उत्पल ने बहुत से स्थानो मे दिखाया है, सत्याचार्य का मत वराह

ने जगह-जगह लिया है। उसी का मत उसको ग्राह्य था, यह बृहज्जातक से सिद्ध होता है। यदि यवन आद्य ग्रन्थकार होते तो इतना मतभेद होना सभव नही था और दूसरे ग्रन्थकारो की अपेक्षा उनको अधिक महत्त्व देना पडता, परन्तु ऐसा उसने नही किया, जिससे यह स्पष्ट है कि यवन आद्यग्रन्थकार नही थे।

म्लेच्छा हि यवनास्तेषु सम्यक् शास्त्रमिद स्थितम्।
ऋषिवत्तेऽपि पूज्यन्ते कि पुनर्दैवविद्द्विजा ।।१५।। बृह० स० अ० २

गर्ग के इस श्लोक को वराह ने उद्धृत किया है। इस श्लोक मे यही कहा गया है कि यवनो मे भी यह शास्त्र अच्छी अवस्था मे है। इस श्लोक से कोई-कोई अनुमान करते है कि सारा का सारा ज्योतिष शास्त्र हम लोगो ने यवनो से लिया, परन्तु यह भूल है। इस श्लोक का पूर्वापर सम्बन्ध देखने से यह पता चलता है कि इसका गणित स्कन्ध से कोई सम्बन्ध नही और ज्योतिषगणित ही ज्योतिष की सर्वस्व या मुख्य शाखा है यह हमारे शास्त्रज्ञ नही मानते, जातक और सहिता को ही मुख्य शाखा मानते है। सहिता शाखा का यवनो से कुछ सम्बन्ध है ही नही इसलिए उपर्युक्त श्लोक जातक के सम्बन्ध मे है, यह उसमे के 'दैववित्' शब्द से स्पष्ट हो जाता है। यवनो मे भी यह शास्त्र अच्छी अवस्था मे प्रचलित है इसलिए वे म्लेच्छ भी पूजनीय है, फिर दैववित् द्विजो की बात ही क्या? यही इस श्लोक का तात्पर्य है। इससे यह सिद्ध नही होता कि सारा का सारा जातक शास्त्र हम लोगो ने यवनो से लिया।

यावनी संज्ञाएँ हमारे जातक ग्रन्थो मे है, इससे बहुत लोग कल्पना करते है कि जातक शास्त्र मूल मे यवनो का था, परन्तु यह सरासर भूल है। इस विषय पर विचार करना आवश्यक है। बृहज्जातक मे ग्रीक भाषा के ३६ शब्द है, ऐसा वेबर और कर्न का कथन है। वे शब्द कहाँ-कहाँ है और उनके क्या अर्थ है, वह नीचे बताया जाता है। अध्याय १ के ८वें श्लोको मे १२ राशियों के ये नाम आये है— (१) क्रिय (२) तावुरि (३) जितुम (४) कुलीर (५) लेय (६) पाथेन (पाथोन) (७) जूक (८) कौर्प्य (९) तौक्षिक (१०) आकोकेर (११) हृद्रोग (१२) इत्थम्। इसके अतिरिक्त श्लोक ९ मे होरा (राशि का द्वितीयाश), द्रेष्काण (राशि का तृतीयाश), श्लोक १५ मे रिफ्फ (कुण्डली का १२वाँ स्थान), श्लोक १६ में द्यून (सातवे स्थान), श्लोक १७ में केन्द्र (१, ४, ७ और १०वे स्थान), श्लोक १८ मे पणफर (२, ५, ८ और ११वाँ स्थान), अपोक्लिम (३, ६, ९ और १२वे स्थान), हिबुक (चौथा स्थान), यामित्र (सातवाँ स्थान), त्रिकोण (पाँचवाँ स्थान), मेषूरण (१०वाँ स्थान), श्लोक २० में वेशि (सूर्य जिस स्थान मे हो उससे आगे का स्थान), अध्याय २ श्लोक २ मे हेलि (सूर्य),

हिम्न अथवा हेम्न (चद्र), आर (मगल), कोण (शनि), श्लोक ३ मे आस्फुजित् (शुक्र), अध्याय १३ श्लोक ३ में सुनफा, अनफा, दुरुधर, केमद्रुम (रवि के अतिरिक्त शेष कोई ग्रह चन्द्र से दूसरे स्थान पर हो तो सुनफा, द्वादश स्थान मे रहने पर अनफा और दोनों स्थान पर दो ग्रह होने पर दुरुधर होता है। तीनो में एक भी योग न हो तो केमद्रुम योग होता है), अध्याय ७ श्लोक १० मे लिप्ता (कला) यह गणित का शब्द आया है। ये ३४ शब्द हुए। इनके अतिरिक्त ज्यौ और द्युत ये दो शब्द हैं। द्युत या द्यूत मेरे देखने में नही आया। यदि यह शब्द कही प्रयुक्त हुआ हो तो यह किसी स्थान का वाचक होगा। वेबर का कहना है कि ज्यौ शब्द अध्याय २ श्लोक ३ में आया है परन्तु वह शब्द उक्त श्लोक मे नही पाया जाता। ईज्य शब्द है परन्तु वह संस्कृत मे गुरू के अर्थ मे प्रसिद्ध है। उत्पल ने उसको 'ईज्य' ही पढा है। इत्थम् शब्द को सस्कृत के 'इस प्रकार' के अर्थ में ही उत्पल ने लिया है। कुलीर शब्द सस्कृत है और कर्कट का समानार्थक है। हृद्रोग, त्रिकोण, हेम्न, कोण शब्द ग्रीक ही है सस्कृत नही, यह कौन कह सकता है? यदि इन सब शब्दो को ग्रीक ही मान लिया जाय तो इससे क्या होता है, मेरी समझ मे नही आता। बारह घरो की कुण्डली हमारे यहाँ थी ही नही, वह हम लोगो ने ग्रीक लोगो से ली, यह इन शब्दो के कारण सिद्ध नही होता। कुण्डली की कल्पना हमारे देश मे ही उद्भूत हुई यह हम पहिले दिखा चुके है और यदि यह बात सत्य है तो कुछ यावनी शब्द हमारे ग्रन्थो मे आ गये हो तो इसमे कौन सा महत्त्व है? इससे इतना ही सिद्ध होता है कि जातक स्कन्ध के कुछ यावनी ग्रन्थ हमारे देश मे प्रचलित थे। ये ग्रन्थ प्रचलित थे इसलिए ये उपर्युक्त शब्द भी प्रचार मे आ गये।

आजकल 'बुक' शब्द मराठी मे प्रचलित है। और हो सकता है कि कालान्तर मे इस शब्द का प्राबल्य होकर पुस्तक शब्द केवल ग्रन्थो मे रह जाय। इससे यह सिद्ध नही हो सकता कि पुस्तक की कल्पना हमारे यहाँ हुई ही नही। यही बात उपर्युक्त प्राय: ३६ शब्दो की है। इसके अतिरिक्त यह भी बात है कि एक शब्द के पर्यायवाचक अनेक हो तो कविता मे छन्द के अनुरोध से किसी शब्द विशेष का प्रयोग हो जाता है। इस प्रकार इन छत्तीस शब्दो मे से अधिकाश शब्द छन्द के सौकर्य के लिए प्रयुक्त हुए हैं। बहुत स्थानों पर उनके सस्कृत पर्याय भी है। ३६ शब्दो मे १२ तो बारह राशियों के वाचक है परन्तु तदर्थवाचक दूसरे सस्कृत शब्द भी है ही। हेली इत्यादि छ शब्द ग्रहवाचक है, उनके लिए भी सस्कृत शब्द है। ग्रहो का ज्ञान हमे स्वतन्त्र रूप से हुआ, यह निर्विवाद है। रिफ्फ, द्यून इत्यादि ११ शब्द कुण्डली के स्थानो के वाचक है। किन्तु उनके लिए भी संस्कृत के पर्याय मौजूद है। शेष होरा, द्रेष्काण, सुनफा, अनफा, केमद्रुम और दुरुधर इनका विचार रह गया। इनके पर्यायवाचक संस्कृत शब्द नही

हैं। सुनफा इत्यादि ४ योग हैं जिनको हमने ग्रीक ग्रन्थो से लिया होगा। परन्तु यह कोई महत्त्व की बात नही है। हमारे ग्रन्थो मे सैकडो योग हैं; उनके अतिरिक्त ये ४ योग जो हमे उपयोगी मालूम हुए वे यावनी ग्रन्थो से हमने लिये। होरा और द्रेष्काण ये दो शब्द अवश्य ही बडे महत्त्व के हैं, परन्तु जन्मकुण्डली का सर्वस्व इनमे नही भरा पडा है। हमारी द्रेष्काणपद्धति खाल्डी और मिस्री पद्धति से कुछ भिन्न है यह कोलब्रुक ने भी स्वीकार किया है। परन्तु इनमे कुछ साम्य अवश्य हैं और द्रेष्काण शब्द सस्कृत का नही है इसलिए कोलब्रुक ने इसको महत्त्व देकर जातक हमारा नही है, यह मान लिया। पर यह उसकी सरासर भूल है।

होरा और द्रेष्काण की जातक मे सर्वत्र आवश्यकता होती है पर उनका बहुत महत्त्व है यह नही कहा जा सकता। जिसने जातक का सम्यक् अध्ययन किया है उसे यह बात सहज ही समझ मे आ सकती है। इन दोनो का महत्त्व सैकडे मे ५ से भी कम है। अतएव यद्यपि हमारे जातक मे यवनो के ३६ शब्द हैं तथापि यह सिद्ध नही होता कि हमारा जातक मूलत हमारा नही है।

साराश यह है कि जातक पद्धति आरम्भ से हमारी ही है। उसमे कुछ यावनी शब्द और विचारपद्धति सम्मिश्रित हो गयी, बस यही हमारे जातक स्कन्ध का यवनो से सम्बन्ध है।

पूर्वापर विचार

हमारे ज्योतिष शास्त्र की वृद्धि क्रमश कैसी होती गयी यह हम पहले दिखा चुके है। वराहमिहिर के पूर्व के और ब्रह्मगुप्त से राजमृगाक तक के गणित ग्रथ हमे यदि उपलब्ध होते तो ज्योतिष शास्त्र की अभिवृद्धि का इतिहास अधिक मात्रा में हमे प्राप्त होता। सहिता स्कन्ध मे नयी खोज होना वराहमिहिर के बाद थोडे दिनो ही मे बंद हो गया था। गणित स्कन्ध लगभग शक १००० तक वृद्धिगामी था। भास्कराचार्य के ग्रन्थो के कारण दूसरे पूर्व के ग्रन्थो का लोप सा हो गया और तब से भास्कर के ग्रन्थों की उपपत्तियों का ज्ञान ही ज्योतिःशास्त्र के ज्ञान की पराकाष्ठा माना जाने लगा। ग्रहस्थिति दृग्विसवादी होने लगी, तब सूर्यसिद्धान्त-बीजकल्पक[1] कोई उत्पन्न हुआ, फिर केशव दैवज्ञ तथा गणेश दैवज्ञ उत्पन्न हुए और उन्होने ग्रहशुद्धि की, परन्तु ज्योति शास्त्र को बराबर प्रगतिशील रखने का काम उनसे भी नही हुआ।

वेध लिख रखने की परम्परा चालू न होने के कारण जो बीज संस्कार हुए वे तत्तत् काल के लिए ही सीमित रहे। इसके अतिरिक्त वे कही-कही सूक्ष्म भी नही थे। अतएव

---

१. यह व्यक्ति कौन था इसका पता नहीं लगता।

इससे यह बडी हानि हुई कि वेध से ग्रहो का जो अतर दृष्टिगत हुआ वह अतर कलियुगारम्भ से ही हुआ होगा यह अधिकाश लोगो का मत हो गया। इसलिए वे बीजसंस्कार यद्यपि थोडे वर्षों के लिए थे तथापि दीर्घ काल में विभाजित किये जाने लगे। अतएव वे दीर्घ कालोपयोगी सिद्ध न हो सके और कही-कही निरुपयोगी भी सिद्ध हुए। इसका बड़ा उदाहरण यह है कि जो वर्षमान पहिले से आ रहा था उसकी शुद्धता की ही नही गयी। इसलिए वर्तमान पञ्चाङ्गशुद्धि के मार्ग मे जो सबसे बड़ी समस्या है वह वर्षमान को शुद्ध करने की है। ब्रह्मगुप्त ने प्रथम अनुभव किया कि विषुवदिन पहिले से पीछे हटा है, परन्तु अंतर का मान यद्यपि आर्यभट के समय से अर्थात् केवल १५० वर्ष का था तथापि परम्परागत विश्वास के कारण कलियुगारम्भ से इतना अतर पड़ा होगा ऐसा समझकर ३७०० वर्षों मे उसको बाँट दिया गया। ऐसा न होता तो ब्रह्मगुप्त ने भी सायन वर्षमान का प्रचार किया होता। और उसने ऐसा कर दिया होता तो आज इसके लिए इतने प्रयास न करने पडते। केशव और गणेश दैवज्ञ के वेध भी बहुत उपयोगी सिद्ध नही हुए। उनको यदि पिछले वेध उपलब्ध होते तो वे अपने वेधो को जाँच सकते। साराश यह कि यद्यपि तत्तत् समय के लिए ग्रहशुद्धि की गयी तथापि परवर्ती काल के लिए वे अशुद्ध ही बने रहे।

हमारे प्राचीन ग्रन्थ अपौरुषेय हैं और सर्वाङ्गपूर्ण हैं यह विश्वास ज्योतिष शास्त्र की उन्नति के लिए बडा घातक सिद्ध हुआ। वैसे ही यद्यपि आर्यभट तथा ब्रह्मगुप्त के ग्रन्थ पौरुषेय थे तथापि उनमे अपौरुष ग्रन्थो के समान श्रद्धा हो जाने के कारण इस शास्त्र की क्रमोन्नति के मार्ग मे अनुल्लंघनीय बाधाएँ उपस्थित हो गयी। जब ग्रहस्थिति अनुभव से न मिलने लगी तब उसमे तत्काल मात्र के लिए ही संस्कार किया जाने लगा और वह सस्कार स्वतत्र रूप से नही वरन् मूल ग्रन्थो मे बीज के नाम से। फलत ज्योतिषियो की यह धारणा हो गयी कि इससे अधिक उनका कोई कर्तव्य नही है। इस कारण तथा राज्याश्रय से बेध लेने की दीर्घ काल की परम्परा बद हो जाने के कारण यूरोप खंड मे जो नयी-नयी शोध की गयी वैसी हमारे यहाँ सर्वथा असम्भव हो गयी। राज्याश्रय बंद होने के कारण ज्योतिषियों को अपने कर्तव्य का ज्ञान नही रहा और ज्योतिषियो की इस उदासीनता के कारण राज्याश्रय भी बन्द हो गये। मुसलमानो का प्राबल्य होने के कारण दक्षिण में शक १३०० के बाद और उत्तर खंड में उससे भी पहिले बड़े-बड़े एतद्देशीय राज्य लुप्तप्राय हो गये और देश की शान्ति नष्ट हो गयी। इस अशान्त स्थिति ने ज्योति.शास्त्र की अभिवृद्धि में ऐसे प्रतिबंध खडे कर दिये जो दीर्घकाल तक हटाये न जा सके।

इस प्रतिकूल परिस्थिति में भी कोंकण के नांदगाँव, गोदावरी तीर के पार्थपुर,

गोलग्राम इत्यादि छोटे छोटे गॉवो मे, काशीस्थ विद्यापीठ में, केशव और गणेश दैवज्ञ के ऐसे वेधकार, कमलाकर के समान उपपत्तिवेत्ता, पद्मनाभ के समान यंत्रकार व्यक्तिश: हो गये, यह हमारे लिए कम भूषणास्पद नहीं है। मराठो और पेशवाओ के राज्यकाल में इस (महाराष्ट्र) प्रान्त मे थोडी शान्ति स्थापित होने के साथ-साथ चितामणि दीक्षित नामक यंत्रकार ने नष्टप्राय वेध-परम्परा को पुनर्जीवित किया और कुछ तो ग्रहलाघव के समान ग्रन्थो के कारण और कुछ दूसरे कई कारणो से नष्टप्राय उपपत्तिज्ञान लघुचिन्तामणि-टीकाकार यज्ञेश्वर के द्वारा पुन· स्थापित होते-होते पेशवाओ की सत्ता नष्ट हो गयी। दिल्ली, उज्जयिनी, जयपुर और काशी में आरम्भ किये हुए प्रयोग राजकीय अव्यवस्था के कारण बद हो गये। अगरेजी राज्य स्थापन होने के बाद से देश मे शान्ति हो गयी, विद्या को उत्तेजन मिला परन्तु ज्योति.शास्त्र के गणित और दूसरे गहन तथा मनोरजक विषयो मे नयी खोज के साथ अध्ययन करने के साधनो का अभाव पूरा नही हो सका। छापाखानो के कारण एक ऐसा उलटा प्रभाव पडा कि जहाँ पहिले प्रत्येक गाँव मे पञ्चाङ्गकार ज्योतिषी मिलते थे वहाँ उनकी अब आवश्यकता न रही अतएव उनका लोप होता जा रहा है। ऐसी अवस्था मे भास्कर-सिद्धान्त के समान उपपत्ति ग्रथो का अध्ययन कौन करेगा ? मुहूर्तों की आवश्यकता तथा जातकोक्त भविष्य ज्ञान होने की प्रबल इच्छा अब भी पहिले के समान वर्तमान है और आगे भी रहना सम्भव है। इसके लिए ग्रहगणित करने की थोडी आवश्यकता ज्योतिषियो को अब भी पड़ती है, इस कारण गणित स्कध अब भी जीवित है और जातक स्कध पहिले की तरह नही तो भी कुछ अच्छी स्थिति मे वर्तमान है। परन्तु यह गौरव के लायक कुछ भी नही है।

कोपर्निकस ने अपना ग्रन्थ शक १४६५ मे लिखा। इसके पहिले यूरोपीय ज्योतिष और हमारा ज्योतिष समान स्थिति में थे। भेद इतना ही था कि जहाँ यूरोपीय ज्योतिष वर्द्धमान था वहाँ हमारा निश्चेष्ट सा हो गया था। कोपर्निकस से कुछ दिन पहिले हमारे यहाँ केशव और गणेश दैवज्ञ हुए। कोपर्निकस के बाद यूरोपियन ज्योतिष मे इतना स्थित्यन्तर हो गया कि जहाँ हम उसके पूर्व के ज्योतिष को एक नवोत्पन्न वटवृक्ष की उपमा दे सकते थे वहाँ अनेक शताब्दियो के बाद उसकी उपमा उस महान् वृक्ष से दी जा सकती है जो उस पौधे से बढकर इतना विशाल हो गया है कि उसकी छाया में हजारों जीव आश्रय लेते है। खेद है कि तद्विपरीत हमारा ज्योतिष जैसा था वैसा ही अब तक बना हुआ है।[1]

---

१. ज्योतिर्विलास (दूसरी आवृत्ति), पृष्ठ ५१, ५२ देखिए।

यूरोप खड मे ज्योतिष जिस उत्तमावस्था मे आज है उसका प्रधान कारण नौकागमन है। हमारे देश मे यह कारण विद्यमान नही है परन्तु ज्योतिष के अध्ययन के लिए दूसरे कारण वर्तमान है। पञ्चाग निर्माण यह प्रथम कारण है। इसमे धर्म-शास्त्र और मुहूर्त का भी अन्तर्भाव होता है। जातक दूसरा कारण और जिज्ञासा तीसरा कारण है। कई लोगो का मत है कि हमारे ज्योतिष शास्त्र मे अब कोई सार नही, हमारे पञ्चाङ्ग नष्ट हो जायँ तो कोई हानि नही। परन्तु थोडा विचार किया जाय तो यह स्पष्ट हो जायगा कि हमारे पूर्वजो ने ज्योतिष के सबध मे जितने प्रयत्न किये थे उतने और किसी दूसरे राष्ट्र ने नही किये और उनको इस काम मे जितनी सफलता मिली उतनी वैद्यकादि अनुभववाले दूसरे शास्त्रो मे भी नही मिली। देश के छोटे-छोटे गॉवो की परिस्थिति पर ही ध्यान दे तो हमे पता लगेगा कि इनमे ९०।९५ प्रतिशत ऐसे लोग है जिन्हें पञ्चाङ्ग की आवश्यकता पडती है। नयी दृष्टि के सुशिक्षित लोग यदि पञ्चागो की उपेक्षा करते है तो भी साधारण लोग उसका त्याग नही करते। पञ्चाग के समान ज्योतिर्दर्पण की आवश्यकता के कारण ज्योतिषशास्त्र की हमारे यहाँ उत्पत्ति हुई। पञ्चाग को शुद्ध करना आवश्यक है और ज्योतिष के विषय मे जो आदर भाव लोगो मे वर्तमान है उसे इष्ट दिशा मे प्रभावित करने की इच्छा करना उचित है, परन्तु शिक्षित लोग यदि इस सार्वजनिक श्रद्धा की अवहेलना या उसका तिरस्कार करे तो यह कभी उचित नही कहा जा सकता।

भविष्य के कर्त्तव्य—पञ्चाग शोधन के विषय मे पहले विचार किया ही जा चुका है। शोधन के तीन मार्ग वहा बतलाये गये है। उनमे कौन सा मार्ग श्रेयस्कर है, इस विषय में बहुमत से निर्णय किया जाय तो बहुत अच्छा होगा। परन्तु ऐसा होना कठिन है क्योकि सब लोगो का ध्यान इस विषय की ओर आकर्षित होना असम्भव-सा है। विद्वानो को उचित है कि बहुमत से इस बात का निर्णय करे पर यह भी कठिन है। इस देश की सार्वभौम सरकार परधर्मीय होने के कारण इस काम मे हाथ न बटायेगी। इसलिए ज्योति.शास्त्रज्ञो का तथा इस देश के राजा-महाराजा और धर्म-गुरुओ का यह एक मूल कर्त्तव्य है। इन तीनो ने मिलकर यदि कोई एक मार्ग ठीक कर लिया और उसी के अनुसार नया ग्रन्थ बनवाया तो वह चल निकलेगा। यदि यह ग्रन्थ लोक-सम्मत हो गया अथवा यदि इसको ज्योति:शास्त्र में पारंगत विद्वानों का समर्थन प्राप्त हो गया तो कालान्तर में ग्रहलाघव के समान यह सर्वत्र प्रचार में आ सकता है। परन्तु इसमें विलम्ब लगेगा। वेधशाला स्थापन करके वेध लेकर और तदनुसार प्राप्त ग्रह-स्थिति के अनुसार यदि ग्रन्थ बनाया जायगा तो यह बात अत्युत्तम होगी। परन्तु इस कार्य के लिए सौ-पचास वर्ष अथवा कम से कम बीस-पच्चीस वर्ष लगेंगे। कहा जाता है

कि सकेश्वर पीठ के जगद्गुरु शकराचार्य ने वेध लेने के प्रयत्न आरम्भ किये है। यह बडे आनन्द की बात है। वे यदि उचित दिशा मे चालू रखे गये तो बडी अच्छी बात होगी। परन्तु इस काम मे शकराचार्यादि धर्मगुरुओं के तथा ज्योति.शास्त्रज्ञो के जो कर्तव्य है वे इस प्रकार है—

(१) अग्रेजी नाटिकल आल्मनाक अथवा फ्रेच कालज्ञान पञ्चाग जिन ग्रन्थो के आधार पर बनाये जाते है उन ग्रन्थो के आधार पर भारतीय भाषाओ मे ग्रन्थ बनवाना आवश्यक है। वे ग्रन्थ बहुत बडे है परन्तु उनका ज्ञान हुए बिना नये ग्रन्थ की उपपत्ति समझ मे नही आ सकती। ऐसे ग्रन्थ तैयार होने पर संस्कृत मे उनके आधार पर सिद्धान्त ग्रन्थ, करण ग्रन्थ और तदनुसार सारणी हमारी प्रणाली से बनानी चाहिए।

(२) ग्रन्थ तैयार होने पर कुछ विद्यार्थियो को वृत्तियाँ देकर उसे पढ़ाना चाहिए।

(३) उपर्युक्त ग्रन्थ क आधार पर पञ्चाग निर्माण करवाकर सार्वजनिक द्रव्य से छपवाकर उसे प्रचारित करना चाहिए। पञ्चागशोधन करने के लिए ग्रन्थ तैयार हो जाने से जातक का काम हो ही जायगा। जिसको जातक मे रुचि होगी वह इस शाखा का अध्ययन करेगा। तीसरी रही बात जिज्ञासा की, तो इसके बिना सब निष्फल है। ऊपर हम बतला चुके है कि ज्योतिष शास्त्र की उन्नति का मुख्य कारण नौकागमन था और वह अब भी है, परन्तु उससे भी महत्त्व का कारण यूरोपियन विद्वानो की ज्ञान-पिपासा थी। मनुष्य को अपनी सच्ची योग्यता का ज्ञान होने के लिए ज्योति.शास्त्र के समान दूसरा कोई शास्त्र नही और हमारा इस शास्त्र का ज्ञान आजकल यूरोपखड मे जो इस विषय के प्रसिद्ध तथा प्रतिष्ठित विद्वान् है उनके ज्ञान से किसी तरह न्यून न होना चाहिए। इस विषय में मराठी में कई ग्रन्थ लिखे गये है परन्तु ज्योतिष गणित के ग्रन्थों का अभी निर्माण नही हुआ। केवल पुस्तकी ज्ञान से ही काम न चलेगा। सम्यक् ज्ञान होने के लिए वेधशालाओं की स्थापना करना आवश्यक है। आजकल जो साधारण शिक्षा मिलती है उसमे ज्योतिष विषयक अल्प ज्ञान कुछ न कुछ सबको हो जाता है। ज्योतिषशास्त्र को प्रोत्साहन मिलना चाहिए, ऐसा बहुत लोगों का विचार है। इन कारणो से राष्ट्र का अन्त करण इस विषय के बीज वपन के लिए सस्कृत हो गया है। ऐसे समय मे यदि गाँव-गाँव के ज्योतिषियो को यन्त्रो की जानकारी करायी जाय और उनमे वेध लेने की प्रवृत्ति उत्पन्न की जाय तो कितना महत्त्व का काम होगा। व्यक्तिनिष्ठ प्रयत्नों की अपेक्षा मन्द गति से ही क्यो न हो यदि ऊपर दिखाये गये मार्ग से काम किया जाय तो राष्ट्र की वृद्धि जाग्रत होकर उसका फल चिरस्थायी होगा। देश में बडे-बडे स्थानों पर हमारे प्राचीन ग्रन्थो और प्राचीन यन्त्रो का सग्रह किया जाना आवश्यक है। प्राचीन और नवीन पद्धति से वेध लेकर तदनुसार प्रयोगा-

त्मक अध्ययन कराया जाय तो हमारे प्राचीन पूर्वजो द्वारा स्थापित ज्योतिःशास्त्र उज्ज्वल स्थिति मे ही न बना रहेगा वरन् क्रमश. उज्ज्वलतर होता चला जायगा। पञ्चाग शोधन के विषय मे शकराचार्यादि लोगो के जो तीन कर्तव्य ऊपर बतलाये है उनका पालन करने से राष्ट्र मे व्याप्त अज्ञानतामूलक रोग अच्छा करने मे सहायता मिलेगी। परन्तु तात्कालिक फल प्राप्ति के उपायो की अपेक्षा हमे ऐसा कुछ करना उचित है जिसका फल चिरस्थायी हो। हमारा ज्योति.शास्त्र-वृक्ष प्राचीन काल मे देश की उत्तम भूमि मे उत्पन्न होकर बडे जोर से बढ़ा। उसको समय-समय पर पानी मिलता गया। उसके फलों का स्वाद लेकर लोग तृप्त होते थे। उसके पुष्पो का सौरभ केवल हमारे देश मे ही नही दूसरे देशों मे भी फैल गया। यह सम्भव है कि अति प्राचीन काल मे दूसरे देश के गणकरूपी मेघो से उसकी क्यारी में कुछ जलबिन्दु सिंचित हुए हो परन्तु इससे उत्पन्न हुए बीजों ने उन देशो में जाकर नवीन ज्योतिषवृक्षों को उत्पन्न किया या पुराने वृक्षों को पुनर्जीवित किया, यह बात इस शास्त्र के इतिहास से निस्सशय सिद्ध हो जाती है। इस देश में यह वृक्ष आगे जाकर सूख गया, इसका बढना बद हो गया, इसको पानी न मिल सका और इसकी शाखाओ के कोमल पल्लव म्लान हो गये। प्राचीन काल मे मिले हुए पानी से और यदा-कदा प्राप्त जलकणो से किसी तरह यह प्राण धारण किये हुए है और किसी तरह के खट्टे-मीठे फल दे रहा है। दूसरे देशों में यदि देखा जाय तो इसी के बीज से उत्पन्न हुआ अथवा पुनर्जीवित हुआ वृक्ष इतनी तेजी से बढा है और बढ़ रहा है कि उसके नीचे हजारो जीव आश्रय ले रहे हैं। उसका विस्तार देखा जाय तो हमारे ज्योतिषरूपी वृक्ष से उसका कोई संबध है, यह ध्यान में भी नहीं आता। इतने बडे अन्तर का कारण यह है कि उसको वेधशालाओ से अनुभव रूपी उदक निरन्तर प्राप्त होता गया। तद्विपरीत हमारा वृक्ष नूतन ज्ञान के अभाव के कारण निर्जीव सा हो गया। अत. यदि इस देश मे भी वेधशालाएँ स्थापित हो तो हमारा ज्योतिष भी पुनरुज्जीवित होकर उन्नतिशील हो सकता है तथा क्रमश. पूर्णावस्था को प्राप्त हो सकता है। जैसा कि हम लिख चुके है, हमारी राष्ट्रान्तःकरण रूपी भूमि सुसंस्कृत हो गयी है और नवीन बीजारोपण के लिए तैयार है अतएव इसमें नये बीजसंस्कार किये जा सकते है। हम जगच्चालक सवितृदेव से प्रार्थना करते हैं कि हमारे देश में ऐसे विद्वान् उत्पन्न हों जो अपने मौलिक ग्रन्थों द्वारा इस शास्त्र में नयी-नयी शोध करते हुए उसके भविष्य को उज्ज्वल से उज्ज्वलतर स्वरूप देते रहें और ज्ञान के क्षेत्र में अपने देश की प्राचीन प्रतिष्ठा को पुनः प्रस्थापित करें।

परिशिष्ट १

सायन पञ्चाङ्ग और ग्रहलाघवीय पञ्चाङ्ग के अनुसार वे कतिपय बाते जिनसे दोनो मे अन्तर स्पष्ट हो जाता है—

युति इत्यादि	घटना दिवस	
	सायन पञ्चाङ्ग	ग्रहला० पञ्चाङ्ग
शक १८०८	ई० सन् १८८६	
बुधोदय पश्चिम	१० मार्च	१ मार्च
गुरुचन्द्र युति	१६ अप्रैल घ० २७	१६ अ० घ० ६
भौमचन्द्र युति	१२ मई घ० २८	१२ मई घ० १४
गुरुचन्द्र युति	१३ मई घ० ३७	१३ मई घ० ४८
बुधास्त पूर्व	२९ मई	२५ मई
भौमपूर्वायुति	३० मई	१४ जून
चन्द्रानुराधायु०	१४ जून घ० ३७	१५ जून घ० ४
भौमउत्तरायु०	२२ जून	२८ जून
भौमगुरुयु०	२८ जून	६ जुलाई
गुरुचन्द्रयु०	७ जुलाई घ० १५	७ जुलाई घ० ४०
भौमचन्द्रयु०	७ जुलाई घ० ३०	७ जुलाई घ० ४३
शुक्ररोहियु०	७ जुलाई घ० ४२	८ जुलाई घ० २२
बुधास्त पश्चि०	४ अगस्त	१ अगस्त
शुक्रशनियु०	८ अग० घ० ३३	८ अग० घ० ५५
भौमचित्रायु०	८ अगस्त	१४ अगस्त
बुधोदय पूर्व	२३ अगस्त	१६ अगस्त
भौमचन्द्रयु०	२ सित० घ० १३	२ सित० घ० ५६
शुक्रमघायु०	११ सितम्बर	१३ सितम्बर
गुर्वस्त पश्चि०	२१ सितम्बर	२६ सितम्बर
भौमानुरा० युति	८ अक्टूबर	१२ अक्टूबर
भौमज्येष्ठायुति	१६ अक्टूबर	२० अक्टूबर
रोहि० चन्द्रयुति	१६ अक्टूबर घ० ५६	१७ अक्टूबर घ० ७
शुक्रगुरुयुति	२२ अक्टूबर घ० ५०	२४ अक्टूबर घ० ४०
गुरूदय पूर्व	२२ अक्टूबर	२५ अक्टूबर
शुक्रचित्रायु०	२४ अक्टूबर	२७ अक्टूबर
बुधोदय प०	२६ अक्टूबर	२१ अक्टूबर
गुरुचित्रायु०	३१ अक्टूबर	९ नवम्बर
बुधानुराधायु०	४ नवम्बर	६ नवम्बर
गुरुचन्द्रयुति	२२ नव० घ० ५९	२३ नव० घ० ११
बुधास्त पश्चि०	२७ नवम्बर	२३ नवम्बर
रोहि० चन्द्रयुति	१० दिस० घ० ३२	१० दिस० घ० ४५
	ई० स०	१८८७
बुधास्त पूर्व	१५ जनवरी	११ जनवरी
शुक्रभौमयुति	९ फरवरी घ० ५८	१० फरवरी घ० २४

अमात फाल्गुन शुक्लपक्ष शके १८०८ सवत् १९४३ ईसवी १८८७

ति	वा.	घ.	प.	न.	घ	प	यो	घ	प	क	घ	प	चंद्रराशि	ताराचंद्रयुति. ना	घ	अ.वि	दि.मा.	रविक्रांति दक्षिण.		मध्याह्न क.	मि.	मृ.चं.	पा.ता.	अं.ता.	शास्त्रार्थादिविशेषाः
१	बु	५८	२०	श	३६	६	शि	११	११	किं	२५	४	कुंभ	श	२१	१ द	३८/३४	९	५९	०	१४	२९	९	२३	बुधभौमयु. घ. ३८ बुध. ३२ कला उ.
२	गु	६०	०	पू	४३	५२	सि	१३	३४	बा	३१	४०	कु.२७	×	×	×	३८	९	३८	०	१३	३०	१०	२४	चंद्रद. शुक्रचंद्रयु. घ. ४० शु. १ उ.
२	शु	५	१	उ	५१	३६	सा	१६	२	कौ	५	१	मीन.	उ	२	३१ द	४१	९	१५	०	१३	१	११	२५	अमृत. ५१।३६ नं. जमादिलाखर.
३	श	११	३५	रे	५९	०	शु	१८	२३	ग	११	३५	मी५९	रे	२९	४ द.	४४	८	५३	०	१३	२	१२	२६	भद्रा प्र. ४४।३८ मीनेर्कः ५।५
४	र	१७	४२	अ	६०	०	शु	२०	२३	भ	१७	४२	मेष	अ	२३	१४ द	४७	८	३१	०	१३	३	१३	२७	विनाय ४ वैधृतिपात प्र. ४५।३२
५	चं	२३	२९	अ	५	४४	ब्र	२१	४५	बा	२३	२९	मेष	भ	२६	१७ द	५१	८	८	०	१३	४	१४	२८	वैधृ. नि. १।२४
६	मं	२७	११	भ	११	२६	ऐं	२२	१५	तै	२७	११	मे २८	कृ	४५	१० द	५४	७	४५	०	१३	५	१५	१	मीनेभौम· १२।११ मार्च
७	बु	२९	४५	कृ	१५	४६	वै	२१	३५	व	२१	४५	वृषभ	रो	४२	० उ.	५७	७	२३	०	१२	६	१६	२	
८	गु	३०	३२	रो	१८	२७	वि	१९	३५	भ	०	८	वृ. ४९	मृ	४०	२ उ.	२९/१	७	०	०	१२	७	१७	३	पू.भा. कें: ३४।१२ मृत्यु. १८।२७नं
९	शु	२९	२७	मृ	१९	१६	प्री	१६	५	कौ	२९	२७	मिथु.	आ	२	५ उ.	४	६	३७	०	१२	८	१८	४	बुधउ.भा.यु. घ. ८ बु. २७ द.
१०	श	२६	२४	आ	१८	१०	आ	११	४	ग	२६	२४	मिथु	×	×	×	७	६	१४	०	१२	९	१९	५	भद्राप्र. ५३।५५ शनिचंद्रयु. श. ३ उ.
११	र	२१	२६	पु	१५	१५	सौ	४/५२	३४/१०	भ	२१	२६	मि. १	पु	४	१० द	११	५	५१	०	१२	१०	२०	६	आमलकी ११ दग्ध २१।२६ नं.
१२	चं	१४	५२	पु	१०	४१	अ	४७	४८	बा	१४	५२	कर्क	पु	४	२ द	१४	५	२७	०	११	११	२१	७	सोमप्रदोष आश्रेषाचंद्रयु. क्ष. ४
१३	मं	७/५१	२/१५	आ	४/५३	५१/११	सु	३७	५८	तै	७	२	कर्क५	म	२८	० द	१७	५	४	०	११	१२	२२	८	
१५	बु	४९	०	पू	५०	२९	ध	२७	३०	भ	२३	३८	सिंह	पू	३५	१ द	२१	४	४१	०	११	१३	२३	९	हुताशनी १५ मन्वा.

शुक्र १५ बुधे मध्यमसूर्योदये स्पष्टाग्रहाः

र	म.	बु.	गु.	शु.	श	रा.
१०	११	११	६	११	२	४
२५	६	१२	१२	१८	२२	४
२५	०	४८	४०	१४	५४	९
५१	५६	१३	२	१०	२५	३६
५९	४६	३१	२	७४	०	३
५४	३४	२१	व ५०	३	व ५८	११

रविफलंधनं १।४५।३४

मंबुशु १२ | र ११ के | १०
१ | ९ | ८ | ९
३ श | श ५ चं | गु ७
४ | ६

सूक्ष्म गणित से निरयन-मान पञ्चाङ्ग

सायन मान द्वारा अमान्त चैत्र शुक्ल पक्ष १८०९

अमात फाल्गुन शुक्लपक्ष शके १८०८ सवत् १९४३ ईसवी १८८७

ति	वा.	घ.	प.	न.	घ.	प.	यो	घ	प	क	घ	प	चंद्रराशि	ताराचंद्रयुति. ता	घ	अं.दि	दि. मा.	मु. च.	पा. ता.	अं. ता.	शास्त्रार्थादिविशेषाः
१	बु	५५	१२	श	३०	११	शि	३	२६	कि	२२	४२	कुंभ.	श	३०	१ द.	२८ ३४	२१	९	२३	बुधभौमयु. घ. ८ पूर्वाभाद्र. चद्रयु ध. ५५
२	गु	६०	०	पू	३६	५०	सि	४	४०	बा	२७	४९	कुं.२०	उ	५५	२९ द	३८	३०	१०	२४	वक्रीगुरु चंद्रदर्शनं
२	शु	०	२६	उ	४३	१२	सा	५	५१	कौ	०	२६	मीन.	×	×	×	४१	१	११	२५	अमृत. ४३।१७ नं. जमादिलाखर.
३	श	५	२४	रे	४९	१४	शु	७	८	ग	५	२४	मी४१	रे	४१	३ द	४४	२	१२	२६	भद्रा प्र. ३७।४१ मीनेबुध. ०।५०
४	र	९	५५	अ	५४	३४	शु	७	५४	म	९	५५	मेष	अ	२८	३४द	४७	३	१३	२७	मीनभौम ५५।५५ वैधृ. प्र. २२।४७ नि. ३६।४५
५	चं	१३	३१	भ	५८	३४	ब्र	८	२	बा	१३	३१	मेष	भ	३१	१६द	५१	४	१४	२८	[शुक्रउत्तराभाद्र. यु. घ. १.
६	म	१५	५१	कृ	६०	०	ऐ	७	१	तै	१५	५१	मे १४	कृ	५२	१ द	५४	५	१५	१	मार्च
७	बु	१७	१०	कृ	१	३०	वै	५	११	व	१७	१०	वृषभ	रो	४३	१ उ.	५७	६	१६	२	भद्रानि. ४७।७ शततारकारवि युति. पूर्वाभाद्र-
८	गु	१७	४	रो	२	१४	वि	२ ५६	२७ १५	ब	१७	४	वृ. ३४	मृ	४३	६ उ	२९ १	७	१७	३	मृत्यु ३ नं. दुर्गा ८. [पद्यार्कः ५४।३.
९	शु	१५	४२	मृ	३	५२	आ	५३	५८	कौ	१५	४२	मिथु	आ	१	७ उ.	४	८	१८	४	
१०	श	१३	८	आ	३	१	सौ	४८	२५	गं	१३	८	मि.४७	×	×	×	७	९	१९	५	भद्राप्र. ४१।२२.
११	र	९	३६	पु	१ ५७	१४ १८	शो	४२	९	भ	९	३६	कर्क	पु	४	८ द	११	१०	२०	६	आमल.११ पुष्य चं.यु.घ.५६ चं. १द. आश्ले. चं.यु-
१२	चं	५ ५४	१० ५०	आ	५५	२५	अ	३५	२२	बा	५	१०	क.५५	×	×	×	१४	११	२१	७	रविपूर्वाभाद्र.यु.घ. ५५ सोमप्रदोष.
१४	मं	५४	२५	म	५१	३५	सु	२८	३	ग	२७	१२	सिंह	म	३३	० उ	१७	१२	२२	८	
१५	बु	४८	२१	पू	४७	३४	धृ	२०	३०	भ	२१	२७	सिंह	पू	५३	१० द	२१	१३	२३	९	हुताशनी १५ मन्वादी.

शुक्र १५ बुधे मध्यमसूर्योदये स्पष्टग्रहाः

र	मं.	बु.	गु.	शु.	श.	रा.
१०	११	११	६	११	२	४
२६	७	११	१६	१९	२५	४
५	१	२४	६	२०	३४	५०
९	४६	३८	११	१७	४६	३२
६०	४८	४०	३	७४	०	३
२	५०	४४	८व	३२	५५ व	११

अहर्गण १४९६ मध्यमरवि १०।२४।५।३१ रविफलं चलनं १।५१।३०

शुबुमं १२ | र ११ के | १० | १ | ९ | २ | ८ | ३ श | च ५ रा | गु ७ | ४ | ६

चालू पञ्चाङ्ग

लघुतिथिचिंतामणि-ग्रहलाघवगणित से निरयन मान द्वारा

परिशिष्ट २

शक ६५० के पूर्व के अन्य ग्रन्थों एवं ग्रन्थकारों का परिचय

इस ग्रन्थ के लगभग ३०० पृष्ठो के छप जाने के बाद ज्योतिष शास्त्र के ग्रन्थो के सम्बन्ध मे जानकारी वाली ऐसी दो-तीन पुस्तके प्राप्त हुई जो इसके पूर्व मेरे देखने मे नहीं आयी थी। उन ग्रन्थो के अवलोकन से उपलब्ध विशेष जानकारी यहाँ दे रहा हूँ। अबू अल रेहान मुहम्मद बिन अहमद अलबेरुनी नामक मुसलमान विद्वान् को महमूद गजनवी अपने साथ भारत ले आया था। अहमद अलबेरुनी का जन्म ईसवी सन् ९७३ मे खीवा नामक स्थान मे हुआ था। कालान्तर मे अलबेरुनी वहाँ के तत्कालीन शासक का मत्री बना। अनतर जब महमूद गजनवी ने खीवा पर अधिकार किया तब अल-बेरुनी नजरबद बना लिया गया। नजरबदी की स्थिति मे ही महमूद गजनवी उसे भारत ले आया। अलबेरुनी सन् १०१७ से लगभग १०३१ ई० तक भारत मे रहा। सन् १०३१-३२ (शक ९५३) के आसपास उसने अरबी भाषा मे "इडिका" नामक ग्रन्थ की रचना की। "इडिका" नामक ग्रन्थ मे भारतवर्ष के अनेक शास्त्र ग्रन्थो का वर्णन है। अलबेरुनी ने सस्कृत भाषा का अध्ययन किया था। संस्कृत भाषा मे लिखित अनेक ग्रन्थो का उसने अवलोकन भी किया था। ज्योतिष शास्त्र पर उसका विशेष अधिकार था। उसमें उसकी अत्यधिक रुचि और गति थी। कई ज्योतिष ग्रन्थो का उसने अरबी भाषा मे अनुवाद भी किया था। उसके "इडिका" नामक ग्रन्थ का अनुवाद बर्लिन के प्रोफेसर एडवर्ड सी० साचो ने किया है। इस ग्रन्थ के दो भाग है। उसमे मुख्य रूप से शक ९५० के पूर्व ग्रन्थकारों के सम्बन्ध मे विशेष जानकारी दी गयी है।

मुसलमानों में हिन्दू ज्योतिष शास्त्र का प्रचार—वर्षों तक सिन्ध प्रान्त बगदाद के खलीफाओ के अधीन था। उनमे खलीफा मसूर (ई० सन् ७५३ से ७७४ तक) के शासन काल मे सिन्ध प्रान्त के तत्कालीन एक शासक के यहाँ से एक दूत सन् ७७१ ई० मे उसके दरबार मे गया था। उस दूत के साथ कई ज्योतिषी भी बगदाद गये थे। उन ज्योतिषियों के द्वारा संस्कृत के कतिपय ज्योतिष ग्रन्थो का अरबी भाषा में अनुवाद हुआ। खलीफा हारूँ (रशीद) के शासनकाल (ई० सन् ७८६-८०६) मे वैद्यक

तथा ज्योतिष विषयक कतिपय ग्रन्थो का अरबी मे अनुवाद हुआ। उस समय ब्रह्मगुप्त के ब्रह्मसिद्धान्त तथा खण्डखाद्य का अरबी भाषा मे उल्था हुआ। इतना ही नही, संस्कृत भाषा मे लिखित ज्योतिष के विविध सिद्धान्त ग्रन्थो के आधार पर अरबी भाषा मे स्वतन्त्र ग्रन्थो की भी रचना हुई थी, ऐसा प्रतीत होता है। अल फजारी, याकूब बिन तारिक, अबू अल हसन नामक अरबी भाषा के ज्योतिष ग्रन्थकार ईसवी सन् की ८वी शताब्दी के उत्तरार्ध मे वर्तमान थे। ऊपर लिखे हिंदू ज्योतिषियो की सहायता से उन्होने अरबी भाषा मे ज्योतिष शास्त्र के स्वतन्त्र ग्रन्थ लिखे। उपर्युक्त ग्रन्थ आज तक उपलब्ध नही हो पाये, पर इतना तो स्पष्ट है कि अलबेरुनी के सग्रह में उपर्युक्त तीनों लेखको के ग्रन्थ विद्यमान थे। प्रथम दोनो लेखको के ग्रन्थो का उल्लेख तो अलबेरुनी ने बार-बार किया है। उन ग्रन्थो मे कालमान, महायुग अथवा कल्प की ग्रह भगणसख्या, ग्रहकक्षा योजना, मध्यम ग्रह साधन हेतु अहर्गण-प्रक्रिया, भुजज्या, ग्रहो का अस्तोदय, चंद्रदर्शन आदि सस्कृत ग्रन्थों के अनेक प्रकरण समाहित किये गये थे। अरबनिवासियो ने ज्योतिषशास्त्र का सर्वप्रथम ज्ञान भारतीय ज्योतिष ग्रन्थो के आधार पर सम्पादित किया। अनन्तर उन्हे टालमी के ग्रन्थो का पता चला। मुस्लिम जनता को हिंदू ज्योतिष शास्त्र का परिज्ञान सर्वप्रथम अलफजारी ने कराया। याकूब ने जब ज्योतिषशास्त्र के ग्रन्थ की रचना की तब खण्डखाद्य का अरबी अनुवाद हो चुका था। वह अनुवाद अलफजारी ने किया होगा।

पुलिशसिद्धान्त—अलबेरुनी के पास इस सिद्धान्त की सटीक पुस्तक थी। वह उसका अरबी भाषा मे अनुवाद कर रहा था (अल०, भा० २ पृष्ठ ३०५)। महायुगान्त के ग्रह भगण, सावन दिवस इत्यादि के पुलिशसिद्धान्तोक्त मान का उसने उल्लेख किया है। वह उत्पल द्वारा उद्धत पुलिश-मान से पूर्णत मिलता है। पुलिश के उपर्युक्त विषय सम्बन्धी निश्चित मानदंड का उल्लेख मैंने इस पुस्तक के पृष्ठ २२७ पर किया है। उसमे चन्द्रोच्च, राहु सम्बन्धी भगण नही है। इसका उल्लेख अलबेरुनी ने अनुक्रम से ४८८२१९ तथा २३२२२६ दिया है। सूर्योच्च भोग ८० अंश बताया है। पुलिशसिद्धान्त मे युगपद्धति स्मृतियो के अनुसार है। परन्तु कल्पात महायुग १००८ तथा ७२ युगो का एक एक कर इस प्रकार १४ मनु अर्थात् संधि और सन्ध्यश उसमे नही आया है। उसमें युग का आरम्भ मध्यरात्रि से माना गया है। अलबेरुनी ने अपने ग्रन्थ में उपर्युक्त बातें लिखी है। "पुलिश-सिद्धान्त नाम सैत्र नगर के ग्रीक पौलिस के नाम पर पड़ा है। सैत्र सिकन्दरिया मुझे प्रतीत होता है", ऐसा अलबेरुनी ने लिखा है (अल०, भाग १ पृष्ठ १५३)। परन्तु यूनानी लोगो में युगपद्धति बिल-

कुल न थी, ऐसा उसने लिखा है (भाग १, पृ० ३७४)। ऐसा प्रतीत होता है कि अल-बेरुनी के समय मे उत्पल द्वारा उद्धत पुलिशसिद्धान्त का बहुत अधिक प्रचार था।

आर्यभट पहिला[1]—अबू अलहसन के ग्रन्थ मे से ग्रहभगण सख्या बेरुनी ने दी है (भाग २, पृ० १९), उसमे का बहुत सा अश आर्यभट प्रथम के ग्रन्थ मे मिलता है, कुछ अश नही भी मिलता। सभव है लेखक के प्रमाद के कारण उक्त कुछ अश न मिलता हो। बेरुनी के पास आर्यभट के ग्रन्थ के कुछ भाग व उसका अरबी अनुवाद अवश्य था (भा० १, पृ० २४६ व आर्यभटीय, चतुर्थ पाद, आर्या ११ देखिए)। ये अनुवाद खलीफा मसूर के शासन काल मे हुए थे।

वराहमिहिर—इनका समय बेरुनी ने शक ४२७ दिया है। इनके बृहत्सहिता तथा लघुजातक नामक ग्रन्थो का अनुवाद उसने अरबी भाषा मे किया था। बृहज्जातक की बलभद्र कृत टीका का उसने उल्लेख किया है। सुधाकर के लेखानुसार वराह-मिहिर के योगयात्रा तथा विवाहपटल नामक ग्रन्थ काशी मे है। उत्पल ने लिखा है कि वराहमिहिर ने समाससहिता नामक ग्रन्थ भी लिखा था। वह बृहत्सहिता का सक्षिप्त रूप ही रहा होगा।

---

१. कुसुमपुर के आर्यभट और उनसे भी प्राचीन आर्यभट ऐसे दो आर्यभटो का उल्लेख अलबेरुनी ने किया है। पृ० ३२२ पर मै कह चुका हूँ कि प्राचीन आर्यभट का ग्रन्थ मुझे नहीं मिला। पर प्राचीन आर्यभट का अनुयायी कुसुमपुर का आर्यभट था, ऐसा अलबेरुनी ने लिखा है। इन दोनों आर्यभटो का उल्लेख अलबेरुनी के ग्रन्थों मे ३० स्थानों पर आया है। उन स्थलों को देख उनका वर्णन मैंने पिछले पृष्ठ २६३, ३२० मे किया है जिसमें पहिले आर्यभट का पूरा विवरण दिया है। ग्रहभगण संख्या इत्यादि में दोनों का मतभेद स्पष्ट दिखाई देगा, ऐसा अलबेरुनी ने लिखा है पर दूसरे आर्यभट के सम्बन्ध में यह बात लागू नहीं होती। साथ ही वह पहिले का अनुयायी भी नही था। इससे स्पष्ट है कि अलबेरुनी द्वारा प्रतिपादित दोनो आर्यभट वस्तुतः एक ही थे। मेरा मत है कि प्रो० साचो के ध्यान मे भी यह बात नहीं आयी। मैंने जिस दूसरे आर्यभट का उल्लेख किया है वह पहिले ही हो गया था। उसका ग्रन्थ अलबेरुनी के देखने में नहीं आया था, यह स्पष्ट हो जाने पर भी ऐसा प्रतीत होता है कि उसके सुनने में दो आर्यभट होने की बात आयी अवश्य थी पर उसके समझने में ऊपर लिखे अनुसार भूल हुई है, ऐसा प्रतीत होता है और इससे यह निष्कर्ष निकला कि आर्यभट द्वितीय शक ६५० से ५० या १०० वर्ष पूर्व हुआ होगा। इस ग्रन्थ के आरम्भ में मैंने आर्यभट द्वितीय का जो काल निर्णय किया है, वह ठीक जँचता है।

लल्ल—गणक तरगिणीकार के अनुसार इनका समय शक ४२१ है, पर यह अशुद्ध है जैसा मै पृष्ठ ३१४ मे सिद्ध कर चुका हूँ। भास्कराचार्य ने गोलाध्याय मे लल्ल के वृत्तपृष्ठफलानयन का एक श्लोक उद्धृत कर उसका खण्डन किया है। इससे सिद्ध होता है कि लल्ल ने पाटीगणित ग्रन्थ रचा था। सुधाकर का कथन है कि बीजगणित पर भी उन्होने ग्रन्थ बनाया था। शक ९५० के पूर्व के प्रसिद्ध ज्योतिषियो का कुछ न कुछ वर्णन बेरुनी के ग्रन्थो मे आया है पर उसमे लल्ल का नाम भी नही है। इससे स्पष्ट है कि सिन्ध, पजाब, कश्मीर अथवा उत्तर भारत के अधिकाश भाग मे शक ९५० तक लल्ल का ग्रंथ प्रसिद्ध नही था। इससे तथा लल्ल-बीजसस्कृत प्रथमार्य-सिद्धान्त का दक्षिण मे प्रचार होने से प्रतीत होता है कि वह दक्षिण का निवासी था।

मुजाल कृत लघुमानस (शक ८५४)—मुजाल दाक्षिणात्य थे, जैसा कि पृष्ठ ३१९ पर लिखा जा चुका है। गणकतरगिणीकार ने लघुमानस का समय कभी ८५४ और कभी ५८४ दिया है· इसमे ५८४ दृष्टिदोष है। यह बात उक्त ग्रन्थ में कृतेष्विभ (८५४) दो बार आने तथा अन्य प्रमाणो से स्पष्ट है।

आर्यभट दूसरा—ये अलबेरुनी के पूर्व हुए होगे, ऐसा पहिले दिखाया जा चुका है (देखो पृष्ठ ३२२)।

पृथुस्वामी—जैसा कि पृष्ठ ३२५ पर लिखा जा चुका है, इनका काल लगभग शक ८५० से ९०० तक होगा।

भटोत्पल—इनके जिन ग्रन्थो का वर्णन पृष्ठ ३२७ मे मैने किया है, उनके अतिरिक्त अन्य ग्रन्थो का उल्लेख अलबेरुनी ने किया है। वे है—राहुन्नाकरण और करणपात। ये दोनो करणग्रन्थ तथा बृहन्मानस ग्रन्थ की टीका है। इनमें करण ग्रन्थों का नाम आश्चर्यजनक है। साथ ही एक ही ग्रन्थकार के दो करणग्रन्थ सम्भव भी नही जान पडते। इससे बेरुनी की समझ मे कुछ भूल हुई जान पडती है। उसका कथन है कि उत्पल का श्रूधव नामक एक और ग्रन्थ था। इस नाम मे भी कुछ भूल जान पड़ती है। इस ग्रन्थ के कालादिक के मान की चर्चा अलबेरुनी ने की है। उसका कहना है कि श्रूधव नामक और भी ग्रन्थ है। उसके विषयो का स्वरूप थोडा सा उसने दिया भी है। उससे वह शकुन या प्रश्न ग्रन्थ होगा, ऐसा प्रतीत होता है।

विजयनन्दी कृत करणतिलक—जैसा कि पृष्ठ ३२९ पर लिख आये है, वराहमिहिर लिखित विजयनदी इस विजय-नंदी से बहुत प्राचीन है।

अन्य करणग्रन्थ—करणचूडामणि, लोकानद कृत लोकानंदकरण, भट्टिल कृत भट्टिलकरण ये और करणग्रन्थ है। यह लिखकर बेरुनी आगे कहता है कि इस प्रकार के असंख्य ग्रन्थ है (भा० १, पृष्ठ १५७)। इस ग्रन्थ के पृष्ठ ३४७ मे मैने जो अनुमान

किया था वह अलबेरुनी के लेखों से भी सही उतरता है। देशकाल भेद से ऐसे करण-ग्रन्थ अनेक हुए होगे, यह सहज सभाव्य है। सम्प्रति वे सब उपलब्ध नही है। यदि उपलब्ध भी हुए तो उनका प्रत्यक्ष कोई उपयोग नही। फिर भी ज्योतिष शास्त्र का एव सामान्यतः अपने देश का इतिहास समझने मे उनका अत्यधिक उपयोग होगा।

शक ८५० के बाद के अन्य ग्रन्थ तथा ग्रन्थकार

श्रीपति—इनके पाटीगणित और बीजगणित पर ग्रन्थ है। मुनीश्वर कृत लीलावती की टीका मे इनके ग्रन्थ के जो उद्धरण दिये गये है, उनसे उपर्युक्त ग्रन्थो का पता चलता है, जैसा कि पृष्ठ ३३० पर लिख आये है।

केशव—विवाहवृन्दावनकार केशव का वर्णन पृष्ठ ३५२ मे किया जा चुका है। इनका समय शक ११६५ के लगभग प्रतीत होता है।

महादेव कृत ग्रहसिद्धि—ये गोदा के पास रासिण के रहने वाले थे। वहाँ की पलभा ४॥ थी। अहमदनगर के दक्षिण रासिन नामक एक गॉव है। पर वहॉ की पलभा लगभग ४ है तथा वह गोदा के पास नही है, भीमा के पास महाराष्ट्र मे है।

पृष्ठ ३५३ पर दिये गये कतिपय उल्लेखो से ये गुजराती प्रतीत होते है। सभव है कि मूलतः गुजरात के रहनेवाले होते हुए स्वय ये या इनके कोई पूर्वज महाराष्ट्र देग मे आकर बस गये हो।

नृसिंह—ग्रहलाघवकार गणेश दैवज्ञ के भाई राम थे। उनके ये पुत्र थे (पृष्ठ ३६९)। राम गणेश दैवज्ञ के छोटे भाई रहे होंगे। सुधाकर ने लिखा है कि नृसिंह ने शक १४८० मे महादेव की ग्रहसिद्धि का अनुसरण कर "मध्यमग्रहसिद्धि" नामक ग्रन्थ लिखा। उसमे मध्यम ग्रह मात्र है। स्पष्टग्रह महादेव के ग्रन्थ पर से करना चाहिए। कृष्णशास्त्री गोडबोले की हस्तलिखित मराठी पुस्तक मे लिखा है कि "केशव दैवज्ञ के पौत्र राम के पुत्र नृसिह ने शक १५१० मे "ग्रहकौमुदी" ग्रन्थ लिखा। नृसिह का जन्म शक १४७० है।" यह शक और ऊपर का शक १४८०, इन दोनो मे एक गलत होना चाहिए। शक १४८० छोडकर शेष वर्षगति से गुणा कर ग्रह निकालना चाहिए, ऐसा नृसिह ने लिखा है। इससे स्पष्ट है कि उक्त शक में भूल होनी सभव नही। सम्भवतः शक १४८० के बाद किसी वर्ष नृसिह ने उक्त ग्रन्थ लिखा होगा।

अनुक्रमणिका

१. ज्योतिषग्रन्थ

क. संस्कृत के

ख—संस्कृतेतर भाषाओं के ज्योतिष ग्रन्थ

२. ज्योतिष-ग्रन्थकार

क—संस्कृत भाषा के

ख अन्य भाषाओं के

३ अन्य ग्रन्थ

क. संस्कृत के

ख. संस्कृतेतर भाषाओं के

४. अन्य ग्रन्थकार

क. संस्कृत भाषा के

ख. अन्य भाषाओं के